आई.एस.एस.एन. 2230—7044 पुलिस विज्ञान

वर्ष - 32 अंक 128 जुलाई-सितंबर, 2014

वर्ष - 32 अंक 128 जुलाई-सितंबर, 2014

पुलिस विज्ञान

(त्रैमासिक पत्रिका)
जुलाई-सितंबर, 2014

सलाहकार समिति

राजन गुप्ता
महानिदेशक

आर.के. किणि ए.
अपर महानिदेशक

निर्मल कौर
महानिरीक्षक (एस.पी.डी.)

सुनील कपूर
उप महानिरीक्षक (एस.पी.डी.)

संपादक : **दिवाकर शर्मा**

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, 3 एवं 4 मंजिल
सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
011-24360371/115
011-71213215

संपादकीय

पुलिस विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका का जुलाई-सितंबर, 2014 का अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। जैसा कि संपादक मंडल का यह प्रयास रहता है कि पत्रिका में पुलिस, न्यायालयिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की प्रामाणिक व प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाए। अतः अपराधों को सुलझाने में पुलिसकर्मियों द्वारा किस प्रकार की कार्य-प्रणाली अपनाई जाए, अपराधों से निपटने तथा अपराध होने की संभावनाओं से संबंधित कुछ ओजस्वी विचार तथा प्रेस की भूमिका पर वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों तथा समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो आम पुलिसकर्मी के साथ सभी वर्ग के लिए उपयोगी होते हैं।

इस अंक में इस बार पुलिसकर्मियों के लिए **अपराधों में सहमति का प्रश्न, पुलिस : कर्तव्य पालन में समस्या एवं चुनौतियां, लोक प्रशासन, पुलिस एवं जन सहभागिता, प्राचीर विहीन कारागार, अपराध अन्वेषण में शारीरिक द्रव्यों का महत्व, वर्तमान में परिप्रेक्ष्य पुलिस की अन्वेषणात्मक शक्ति, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिला अपराध एवं पुलिस की भूमिका, भारतीय पुलिस एवं भूमिका प्रतिपादन की दुविधाएं** से संबंधित लेख हैं। पत्रिका के सुधी पाठक पत्रिका को और अधिक सूचनाप्रद व उपयोगी बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि पत्रिका में सम्मिलित सभी लेख पाठकों को उपयोगी लगेंगे और वे अपने विचारों से संपादक मंडल को अवगत कराते रहेंगे। आपके विचारों का सहर्ष स्वागत है।

दिवाकर शर्मा

संपादक

वर्ष - 32 अंक 128 जुलाई-सितम्बर, 2014

समीक्षा समिति के सदस्य

प्रो. एम.जैड. खान, नई दिल्ली
श्री एस.वी.एम. त्रिपाठी, लखनऊ
प्रो. अरुणा भारद्वाज, नई दिल्ली
प्रो. जे.डी. शर्मा, सागर (म.प्र.)
प्रो. स्नेहलता टंडन, नई दिल्ली
डा. दीप्ति श्रीवास्तव, भोपाल
प्रो. वी.के. कपूर, जम्मू
डा. शैलेंद्र कुमार चतुर्वेदी, मेरठ
डा. अरविंद तिवारी, मुंबई
डा. उपनीत लल्ली, चंडीगढ़
श्री वी.वी. सरदाना, फरीदाबाद
श्री सुनील कुमार गुप्ता, नई दिल्ली

अनुक्रम

अपराधों में सहमति का प्रश्न
- *वीणा पाठक* ---------- *7*

पुलिस : कर्तव्य पालन में समस्या एवं चुनौतियां
- *कु. दीप्ति श्रीवास्तव* ---------- *11*

लोक प्रशासन, पुलिस एवं जन सहभागिता
- *कैलाशनाथ गुप्त* ---------- *15*

प्राचीर विहीन कारागार
- *डा. मीरा सिंह* ---------- *22*

अपराध अन्वेषण में शारीरिक द्रव्यों का महत्व
- *अरुण कुमार पाठक* ---------- *29*

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पुलिस की अन्वेषणात्मक शक्ति
- *डा. जनार्दन कुमार तिवारी* ---------- *36*

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिला अपराध एवं पुलिस की भूमिका
- *डा. उपासना शर्मा* ---------- *48*

भारतीय पुलिस एवं भूमिका प्रतिपादन की दुविधाएं
- *प्रोफेसर ए.एल. श्रीवास्तव / डा. अंजनी कुमार श्रीवास्तव* ---------- *54*

'पुलिस विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।

कवर डिजायन : राहुल कुमार

अक्षरांकन एवं पृष्ठ सज्जा : ओम प्रकाशन, डी-46, विवेक विहार (भूतल), दिल्ली-110095

अपराधों में सहमति का प्रश्न

वीणा पाठक
द्वारा पुस्तक सदन प्रकाशन
नजूल शाप नं.-4
(शिक्षा निदेशालय के सामने)
सरोजिनी नायडू मार्ग, सिविल लाइंस,
इलाहाबाद-211002 (उ.प्र.)

अपराधों की विवेचना के दौरान कई प्रकार के आपराधिक प्रकरणों में विवेचन को अपराध कारित होने में 'सहमति' के बिंदु पर भी विचार करना पड़ता है। सहमति उस अपराध का महत्वपूर्ण पहलू होती है जो अपराध की गंभीरता को कम या ज्यादा अथवा नगण्य सिद्ध कर सकती है।

सहमति है क्या?

सहमति का अर्थ है—स्वैच्छिक रूप से अनुमति देना या अनुपालन करना। सहमति में जोर, दबाव, भय या गलतफहमी पैदा करके सहमति प्राप्त करना शामिल नहीं है। भारत के संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के संवैधानिक अधिकार मूल अधिकार के रूप में प्रदान किए गए हैं। अपने स्वास्थ्य एवं निजता की रक्षा के लिए अपने शरीर के प्रति इच्छानुसार व्यवहार करना प्रत्येक व्यक्ति का संवैधानिक अधिकार है। कानूनी रूप से विधि मान्य होने के लिए यह जरूरी है कि सहमति परिस्थितियों एवं सभी शामिल जोखिमों को समझने के बाद ही दी जाए। एक बार आपने सहमति दे दी तो यह माना जाएगा कि आपने सहमति देने से पूर्व सभी तथ्यों, परिस्थितियों एवं जोखिमों को भली-भांति समझने के बाद ही अपनी सहमति दी है।

सहमति की आवश्यकता इलाज या चिकित्सकीय परीक्षण के पूर्व ही पड़ती है। चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि किसी व्यक्ति का इलाज या परीक्षण करने से पूर्व वह उसे सभी तथ्यों, परिस्थितियों एवं जोखिमों को भली-भांति समझा दे तथा उसकी सहमति प्राप्त कर ले।

सहमति स्वतंत्र, स्वैच्छिक, सूचित, स्पष्ट और प्रत्यक्ष होनी चाहिए। सहमति फोन से, अप्रत्यक्ष, दबाव में, भय या गलतफहमी में, तथ्य छुपाकर नहीं लेनी चाहिए। सहमति यदि भय या गलतफहमी में या दबाव में या तथ्य छुपाकर या किसी विक्षिप्त अथवा मनोरोगी द्वारा दी जा रही है, तो वह वैध नहीं होगी।

सहमति देने से इंकार कर देने की स्थिति में किसी भी प्रकार का परीक्षण नहीं किया जा सकता है। यदि चिकित्सक सहमति प्राप्त करने से पूर्व रोगी को सही जानकारी देने में अक्षम रहता है तो उस पर लापरवाही का आरोप लगाया जा सकता है और अगर चिकित्सक द्वारा सहमति प्राप्त नहीं की जाती है तो यह व्यक्ति की निजता पर हमला माना जाएगा।

सहमति के प्रकार

सहमति को निम्न चार प्रकारों में बांटा जा सकता है—

1. निहित सहमति, 2. व्यक्त सहमति, 3. अवगत सहमति, 4. आवरण सहमति।

निहित सहमति

यहां सहमति इस तथ्य में निहित होती है कि रोगी अपनी समस्या लेकर चिकित्सक के पास आया और अपनी बीमारी बताकर इलाज प्राप्त किया। जैसे—डाक्टर द्वारा इंजेक्शन लगवाने की राय देने पर रोगी सूई लगवाने के लिए अपना हाथ बढ़ा देता है या ग्लूकोज चढ़ाने के लिए हाथ में सूई लगवा लेता है। इन स्थितियों में रोगी इलाज के लिए अपनी सहमति

व्यक्त नहीं करता है, अपितु उसकी सहमति मान ली जाती है। इसका कारण यह है कि अधिकतर रोग, उनका निर्णय एवं उनके इलाज की कार्यविधि आसान एवं सहज होती है और जोखिम न के बराबर एवं दुर्लभ होते हैं तथा रोगी का व्यवहार इलाज हेतु उसकी रजामंदी दर्शाते हैं।

यहां पर चिकित्सक को सतर्कता यह बरतनी चाहिए कि इलाज में जटिलता की जरा भी आशंका लग रही हो तो उसे अपने हितों की रक्षा के लिए व्यक्त सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

व्यक्त सहमति

व्यक्त सहमति लिखित या मौखिक हो सकती है। नियमित शारीरिक परीक्षण के अलावा किसी भी कार्यविधि जैसे—शल्य क्रिया (आपरेशन), रक्त का नमूना लेना, रक्त आधान करना (रक्त चढ़ाना), शरीर के किसी अंग को काट-छांटकर हटाना या प्रत्यारोपित करना आदि के लिए व्यक्त सहमति जरूरी है। यदि यह लिखित रूप में हो तो अति उत्तम है। किसी पीड़ित महिला का बलात्कार आदि मामले में चिकित्सकीय परीक्षण करने के पूर्व उसकी लिखित सहमति आवश्यक है। यह सहमति प्रस्तावित कार्य से तुरंत पहले ही प्राप्त करनी चाहिए, न कि अस्पताल में भर्ती के समय।

बड़ी शल्य क्रिया जैसे मस्तिष्क के आपरेशन, हृदय के आपरेशन, शरीर से गोली निकालने के आपरेशन आदि के पूर्व किसी उदासीन तृतीय पक्ष (स्वतंत्र व्यक्ति) की उपस्थिति में लिखित सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस प्रकार की सहमति प्राप्त करने के पूर्व रोगी को शल्य क्रिया की कार्यविधि और परिणाम के प्रभाव और दुष्प्रभाव के विषय में बता देना चाहिए। उदासीन तृतीय पक्ष की उपस्थिति में मौखिक सहमति भी लिखित सहमति के समान ही है परंतु लिखित सहमति हो तो यह सबसे बढ़िया है।

अवगत सहमति

इस प्रकार की सहमति चिकित्सा की आवश्यकता पेशे में बहुत पड़ती है। नियमित इलाज की प्रक्रिया के अलावा किसी भी गंभीर कार्यविधि हेतु इसकी आवश्यकता पड़ती है। गंभीर बीमारी (रोग) की स्थिति में चिकित्सक को रोगी को उसकी बीमारी, उसके इलाज के प्रस्तावित तरीके एवं विकल्प तथा इलाज में होने वाले संभावित जोखिमों के बारे में प्रासंगिक विवरण देना पड़ता है। रोगी को इलाज की सफलता या असफलता की सापेक्ष संभावना भी बतानी पड़ती है ताकि वह सबकुछ समझकर अपने बारे में उचित व बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय ले सके तथा अपनी सहमति दे सके।

गंभीर परिस्थिति में रोगी को उपरोक्त बातें अवगत कराने पर यह भी हो सकता है कि वह डर जाए और इलाज से इंकार कर दे जबकि उसे इलाज की सख्त जरुरत हो, ऐसी स्थिति में यह चिकित्सक पर निर्भर करता है कि वह रोगी को चीजें अपने सामान्य ज्ञान और विवेक से इस प्रकार समझाए कि वह स्वयं ही इलाज के लिए अपनी सहमति दे दे।

यदि रोगी सहमत न हो रहा हो, भावनात्मक रूप से परेशान हो तो चिकित्सक को गोपनीय रूप से उसके परिजनों को अवगत कराकर उनकी सहमति प्राप्त कर इलाज करना उचित रहता है।

आज की स्थितियों में सभी प्रकार की शल्य क्रिया, चेतना-शून्य प्रक्रिया (बेहोश करने की प्रक्रिया) एवं जटिल चिकित्सकीय प्रक्रियाओं के लिए अवगत सहमति अति आवश्यक है।

आवरण सहमति

कोई भी चिकित्सक प्राप्त सहमति से अलग और वृहद शल्य क्रिया नहीं कर सकता है। मगर कभी-कभी शल्य क्रिया के दौरान पूर्वानुमानित शल्य क्रिया से भी ज्यादा वृहद शल्य क्रिया की जरुरत पड़ सकती है। ऐसे में चिकित्सक की रक्षा आवरण सहमति करती है।

चिकित्सक ऐसी शल्य क्रिया के दौरान रोगी के जीवन भय को देखते हुए अपनी विशेषज्ञता, ज्ञान व अनुभव के आधार पर आगे की शल्य क्रिया कर देता है। ऐसी परिस्थिति में विस्तृत आम सहमति लापरवाही के आरोप से चिकित्सक की रक्षा करती है।

आपातकालीन परिस्थितियों में जब रोगी का जीवन संकटापन्न हो, वह बेहोश हो तथा वह स्वयं सहमति देने की स्थिति में न हो तथा उसका कोई निकटस्थ परिजन या अभिभावक भी उपस्थित न हो तो रोगी के इलाज के लिए समय बरबाद नहीं किया जा सकता है। तब बिना सहमति के ही रोगी का इलाज किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में आपातकालीन सिद्धांत कार्रवाई हो जाती है और सहमति प्रदान की गयी मान ली जाती है। यह चिकित्सक के हितों की रक्षा करता है और उसे हानि, लापरवाही या घात के लिए कार्रवाई से सुरक्षा प्रदान करता है। सड़क दुर्घटना के प्रकरणों में इस सिद्धांत की जरुरत पड़ती है और इसी के आधार पर सहमति मानकर रोगी का इलाज किया जाता है।

कभी-कभी आपातकालीन परिस्थितियों में माता-पिता या अभिभावक या रिश्तेदार की अनुपलब्धता की स्थिति में मौके पर मौजूद लोगों से ही सहमति प्राप्त की जाती है।

अंगों के प्रत्यारोपण के लिए या मृत्यु के पश्चात आंखों आदि को प्रत्यारोपित करने के लिए निकालने के लिए 18 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति अपने जीवनकाल में सहमति दे सकता है। उसकी मृत्यु के बाद अंगों को निकालकर प्रत्यारोपित करने के लिए उसके निकट संबंधी या वारिस सहमति दे सकता है।

बधियाकरण, कृत्रिम गर्भाधान या नसबंदी आदि के लिए या यौन एवं जननांगों से संबंधित किसी भी कार्यविधि के लिए पति और पत्नी दोनों की लिखित अवगत सहमति प्राप्त कर लेनी चाहिए। ऐसा करने में विफल रहने पर चिकित्सक पर लापरवाही के कारण नुकसान के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है।

अपराध के प्रकरणों में भी सहमति का प्रश्न बड़ा ही महत्वपूर्ण है। आपराधिक मामलों में नाबालिग की सहमति का कोई महत्व नहीं माना गया है।

यदि एक स्त्री स्वतंत्र और स्वैच्छिक रूप से कार्य की प्रकृति एवं परिणामों की पूर्ण जानकारी रखते हुए संभोग के लिए खुद को समर्पित करती है तो यौन संबंध के लिए उसकी सहमति मान ली जाती है बशर्ते कि वह स्त्री 16 वर्ष से कम आयु की न हो।

16 वर्ष से कम आयु की स्त्री या पागल या विक्षिप्त द्वारा दी गयी सहमति वैध नहीं होती है। बहकावे में या जान जाने के खतरे के डर से यौन संबंध बना लेने की दी गयी सहमति या समर्पण की बात को सहमति के रूप में नहीं माना जा सकता हैं। वेष बदलकर या छल से भी हासिल की गयी सहमति अवैध होती है, क्योंकि स्त्री इस विश्वास में सहमति प्रदान करती है कि सामने वाला व्यक्ति उसका पति है।

बलात्कार के प्रकरणों में सहमति ही अपराध कारित होने या न होने का महत्वपूर्ण संघटक होती है। सहमति कार्य से पूर्व प्राप्त करनी चाहिए न कि कार्य के दौरान या कार्य के बाद। कार्य के दौरान या कार्य के बाद प्राप्त की गयी सहमति अवैध होती है।

बलात्कार से पीड़ित महिला का परीक्षण भी उसकी सहमति से ही किसी उदासीन महिला गवाह की उपस्थिति में किया जाना चाहिए। किसी नाबालिग अथवा विक्षिप्त के परीक्षण के लिए उसके माता-पिता, अभिभावक या उसके निकट संबंधी की सहमति अनिवार्य है।

किसी अभियुक्त का चिकित्सकीय परीक्षण उसकी सहमति के बिना भी किया जा सकता है। यदि अभियुक्त इसका विरोध करे तो उचित बल प्रयोग भी उसके विरुद्ध किया जा सकता है। यह प्रावधान दं.प्र. संहिता की धारा 53 में वर्णित है। इसी प्रकार समाज के हित को ध्यान में रखते हुए कैदियों का इलाज उनकी सहमति के बगैर

बलपूर्वक किया जा सकता है।

किसी रोगी की बीमारी की प्रकृति के बारे में किसी तृतीय पक्ष को उसकी सहमति के बिना उजागर नहीं किया जा सकता है। चिकित्सक यह राज केवल तभी जाहिर कर सकता है अगर वह 'विशेषाधिकृत वार्तालाप' हो। जैसे यदि किसी व्यक्ति पर मुकदमा चल रहा हो तो उसे चिकित्सक को अपनी स्थिति किसी तृतीय पक्ष को उजागर करने से रोकने का अधिकार है परंतु अपराधी ठहराए जाने के बाद उसके पास ऐसा कोई अधिकार नहीं रह जाता है और चिकित्सक इस स्थिति के बारे में अधिकारियों को अवगत करा सकता है। यदि कोई रोगी बेहोश है तो उसके होश में आने पर यदि वह सहमति देता है तभी परीक्षण में पाए गए तथ्यों को पुलिस को बताया जा सकता है।

यदि कोई छात्र छात्रावास में रहता है और वह 12 वर्ष से अधिक की उम्र का है और उसका कोई इलाज कराना है तो इसके लिए उसकी सहमति आवश्यक है। 12 वर्ष से कम उम्र के छात्र के लिए छात्रावास अधीक्षक या प्राचार्य सहमति प्रदान कर सकते हैं।

यदि 12 वर्ष से अधिक का छात्र किसी ऐसी बीमारी से ग्रसित है जिससे संक्रमण फैलने की आशंका है तो उसे छात्रावास छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है। यदि वह छात्रावास में रुकता है तो बगैर सहमति के उसका इलाज किया जा सकता है।

किसी शादीशुदा व्यक्ति के इलाज के लिए उसके साथी की सहमति की जरुरत नहीं है। स्त्री रोग से संबंधित शल्यक्रिया के लिए सिर्फ स्त्री की सहमति भी काफी है। यदि इलाज के दौरान जीवन को खतरा हो या नपुंसकता की संभावना हो या गर्भस्थ शिशु को कोई खतरा हो तो पति-पत्नी दोनों की सहमति जरूरी है।

18 वर्ष से ऊपर का व्यक्ति उसके भले के लिए किए गए ऐसे कार्य, जिससे मृत्यु की संभावना न हो, के लिए मान्य सहमति प्रदान कर सकता है। यह प्रावधान भा.दं. संहिता की धारा-87 एवं धारा-88 में वर्णित है। 12 वर्ष से ऊपर की उम्र का बच्चा अपने भले के लिए किए गए किसी कार्य से होने वाले नुकसान के लिए सहमति दे सकता है। 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चे के लिए उसके माता-पिता या अभिभावक की सहमति प्राप्त करना अनिवार्य है।

किसी बाल अपराधी के परीक्षण के लिए उसके माता-पिता या अभिभावक की सहमति प्राप्त की जाती है। पीड़ित बालक के परीक्षण के संबंध में भी यही बात लागू होती है लेकिन यदि बाल अपराधी के परीक्षण की मांग मजिस्ट्रेट द्वारा की जानी है तो सहमति की आवश्यकता नहीं होती है।

बिना सहमति या आज्ञा के शव परीक्षण करना भी गैर कानूनी व अनुचित है। न्याय वैधकीय शव परीक्षण हेतु सहमति की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि यहां शव परीक्षण अनुमोदन से किया जाता है। विधि व्यवस्था से स्थापित कानून राज्य को सभी संदेहास्पद एवं अप्राकृति कारणों से हुई मृत्यु में शव परीक्षण का आदेश देता है।

बलात्कार के प्रकरणों में आरोपी का परीक्षण कराने हेतु आरोपी से सहमति लेना आवश्यक नहीं है। आरोपी से सहमति मांगी जा सकती है परंतु यदि वह सहमति न भी दे या वह इंकार कर दे तो भी उसका परीक्षण किया जाना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सहमति का प्रश्न अपराध के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण है। विधि व्यवस्था के तहत सहमति के इन निर्धारित मानदंडों का हर हालत में पालन किया जाना ही श्रेयस्कर है अन्यथा अनायास जानकारी के अभाव में दंड का भागी बनना पड़ सकता है।

(उपरोक्त लेख में स्त्री की आयु 16 वर्ष लेखिका द्वारा दी गई है जबकि नए संशोधन के अनुसार अब यह आयु 18 वर्ष है—संपादक)

पुलिस : कर्तव्य पालन में समस्या एवं चुनौतियां

कु. दीप्ति श्रीवास्तव
शोधछात्रा, समाजशास्त्र विभाग, 289
सैनिक कुंर्जा नंदाशहर, पो. कुड़ा घाट
गोरखपुर उ.प्र. 273008

पुलिस समाज का अभिन्न अंग है, पुलिस बल का गठन समाज की सुरक्षा एवं कानून के पालन के लिए किया गया है। पुलिस का समाज के प्रति महत्वपूर्ण कर्तव्य है। समाज की सुरक्षा का दायित्व पुलिस के ऊपर है, इसलिए पुलिस को अपने कार्य का निर्वहन बहुत सजगता के साथ करना पड़ता है। यदि पुलिस के कर्तव्य दायित्व में शिथिलता रहती है तो समाज में अराजकता की स्थिति आ जाती है। आज सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुलिस के सहयोग की आवश्यकता महसूस की जाती है। सामाजिक व्यवस्था के सुव्यवस्थित एवं सुचारू ढंग से संचालन के लिए पुलिस बल का गठन किया गया है।

प्रजातांत्रिक संस्थान में पुलिस की उच्चतम धारणा समाज सेवा है। पुलिस और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। वास्तव में पुलिस की जनता के समक्ष भावना को निम्न रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

भावना	पुलिस
देशभक्ति	जनसेवा
कानून के प्रति समर्पण	सेवा
सदभाव	सहायता
कर्तव्यनिष्ठा	सहयोग
उपकारिता	समर्थन
स्वीकृत	प्रशंसा
सहजता	समान व्यय
समभाव	सहानुभूति
सत्संग	वार्त्तालाप
रूचि	मेल मिलाप

(स्रोत : राव जी.बी., 1986 अखिलेश एस., 2006-07)

पुलिस सही व गलत के दोराहे पर खड़ा ऐसा व्यक्ति है, जिसका दायित्व असत्य को कानूनी दृष्टि से परखना तथा कानूनी रूप से सत्य की रक्षा करना है। अपनी सर्वश्रेष्ठ भूमिका में वह अपने आप में एक कार्यकर्ता तथा व्यवस्था एवं अधिकार का प्रतीक है। पुलिस तंत्र वह संगठन है जिसके द्वारा पारित नियमों को मनमाने अथवा दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के प्रवर्तन का कार्य किया जाता है। अन्य अधिकरणों की तुलना में सुरक्षा तंत्र में पुलिस की भूमिका अधिक रहती है। पुलिस शब्द के प्रत्येक अक्षर का उसकी कार्यशैली से गहरा संबंध है। जिसे निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

पी	P	पोलाइट अर्थात विनम्र
ओ	O	ओबिडिएंट अर्थात आज्ञाकारी
एल	L	लॉयल अर्थात विश्वासपात्र
आई	I	इंटेलिजेंट अर्थात बुद्धिमान
सी	C	करेजियस अर्थात साहसी
ई	E	एलीसिएंट अर्थात दक्ष

(स्रोत : राव जी.बी., 1986 अखिलेश एस., 2006-07)

पुलिस शब्द की परिभाषा

1. सदरलैण्ड के अनुसार :—पुलिस शब्द प्राथमिक रूप से राज्य के उन एजेन्टों की ओर संकेत देता है, जिसका कार्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना तथा नियमित अपराधी संहिता लागू करना है।

2. एनसाइक्लोपीडिया विटनिका के अनुसार :— पुलिस शब्द व्यक्तियों के ऐसे संगठन को निर्दिष्ट करता है जो कानून के उल्लंघन का अनुसंधान करता है।

आज के वर्तमान समाज में आय व्यक्ति की

सामाजिक परिस्थिति के निर्धारण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार है। आय के द्वारा ही व्यक्ति वस्तुओं एवं सेवाओं पर स्वामित्व प्राप्त करता है।

आय की उच्चता भिन्नता द्वारा न केवल व्यक्ति का सामर्थ्य की उच्चता या निम्नता का बोध होता है वरन यह भी निर्धारित होता है कि व्यक्ति किस प्रकार के जीवन स्तर, सुख-सुविधाओं की सामग्रियों को प्राप्त करेगा तथा उसका सामाजिक जीवन किस मात्रा में उसे संतुष्टि प्रदान करेगा। अधिकांश पुलिसकर्मी अपने वेतन से संतुष्ट नहीं हैं, जिसके कारण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति सही तौर पर नहीं कर पाते हैं या अन्य स्रोत से पैसा कमाने का प्रयास करते हैं। अनेक विभागीय भ्रष्टाचार एवं जनता के साथ दुर्व्यवहार काफी हद तक इन्हीं आत्म केंद्रीय भावनाओं का परिणाम है।

आमतौर पर समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक स्थायी आवास होता है। पुलिस सेवा की शर्तों के अनुसार उनके जन्म के जनपद में उनकी नियुक्ति नहीं की जाती है। इसलिए जिस जनपद में उनकी नियुक्ति होती है वहां पर उनका अस्थायी आवास रहता है। वरिष्ठ अधिकारियों को आवासीय सुविधा आसानी से मिल जाती है। जिससे वे अपने परिवार के साथ रह सकते हैं एवं बच्चों की शिक्षा-दिक्षा की भी ठीक तरह से देख-रेख कर सकते हैं। सबसे ज्यादा आवासीय असुविधा हेड कांस्टेबल एवं कांस्टेबल की होती है। ये सामान्यतः बैरेक में ही रहते हैं। सबको अलग-अलग सरकारी आवास उपलब्ध नहीं होता या यों कहें कि अधिकांश को नहीं मिलता है, जिसके कारण पुलिस जन को अनेक पारिवारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वे अपने परिवार, बच्चों एवं पत्नी को साथ नहीं रख सकते, बच्चों की शिक्षा भी इसीलिए बुरी तरह प्रभावित होती है। इसका प्रभाव पुलिस जन पर पड़ता है। फिर भी यह अपनी ड्यूटी में लगा रहता है।

सामान्यतः पुलिसकर्मियों को निर्धारित समय समय से अधिक समय तक ड्यूटी देनी पड़ती है। कभी-कभी तो चौबीस घंटे की ड्यूटी देनी होती है, परंतु उस अतिरिक्त समय की ड्यूटी का न तो अतिरिक्त वेतन ही मिलता है और न अवकाश ही। पुलिसकर्मियों के ऊपर समाज के प्रति जिम्मेदारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, परंतु उनके वेतन एवं अन्य सुविधाओं में उतनी तेजी से वृद्धि नहीं की जा रही है। जिससे इनमें पर्याप्त असंतोष व्याप्त है। इनके अपने कर्तव्य पालन में लगन की कमी भी परिलक्षित होती है, फिर भी ये अपने कर्तव्य पालन में लगे रहते हैं।

साथ ही ये पुलिसकर्मी अपने विभाग द्वारा निर्धारित अवकाश का भी पूरा-पूरा उपभोग नहीं कर पाते हैं। इसका कारण इनकी संख्या में कमी का होना है। इस समस्या के बावजूद पुलिसकर्मी अपने कर्तव्य पालन में लगे हैं।

आजकल अपराध और अपराधियों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है। पुलिस के अधिकारियों व कर्मचारियों की संख्या इस अनुपात में नहीं बढ़ी अपितु कहीं कहीं कम है। अतः कार्यभार में वृद्धि के परिणाम स्वरूप पुलिसजनों को चौबीसों घंटे काम करना पड़ता है। कार्याधिक्य के कारण इनकी शारीरिक एवं मानसिक अवस्था पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इसके बावजूद कार्य ढंग से पूरा नहीं हो पाता है। इस प्रकार हाल के दशकों में पुलिस की जिम्मेदारियां एक तरफ कई गुनी बढ़ गई हैं, दूसरी तरफ इन कर्मियों की संख्या भी कम है, जिसके कारण पुलिसजनों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

आज के राजनैतिक संदर्भ में पुलिस की कार्य प्रणाली काफी चुनौतीपूर्ण हो गई है। राजनैतिक हस्तक्षेप की भी बात सामान्यतः कही जाती है। राजनैतिक क्षेत्र की नैतिकता के बिखराव के साथ-साथ पुलिस की व्यवस्था और क्षमता में कटाव आना स्वाभाविक है। बड़े-बड़े अपराधों पर पर्दा डालने हेतु बहुधा राजनैतिक दबाव के फलस्वरूप अपराधी को छोड़ दिया जाता है। जिससे पुलिसजनों को अनेक दूरगामी समस्याओं का

सामना करना पड़ता है।

पुलिसकर्मियों को अपराध रोकने तथा अपराधी की खोज बीन करने में काफी समय लगता है। जिसके कारण उनका एक जगह पर ज्यादा दिन रहना आवश्यक हो जाता है लेकिन जल्दी जल्दी स्थानांतरण के कारण उनको अपने कर्तव्य पालन में कठिनाइयां होती हैं। पुलिसकर्मियों का अधिकांशतः समय अपराधियों के बीच बीतता है, यह एक जोखिमपूर्ण कार्य है। पुलिसकर्मियों को कभी-कभी कर्तव्य पालन में घायल हो जाना पड़ता है। कभी-कभी तो जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है।

पुलिस को असामाजिक तत्वों से समाज की रक्षा करने के लिए कानूनी कार्रवाई करनी पड़ती है। इसके द्वारा की जाने वाली इन कानूनी कार्रवाई के संदर्भ में गवाहों को बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है, गवाहों के बिना अदालतों में मुकदमे टिक नहीं पाते, पुलिस गवाहों को ढूंढ़ती है, क्योंकि अधिकतर गवाह विभिन्न कारणों से गवाही नहीं देना चाहते। इसमें अपराधियों से भय, गवाहों की उचित सुरक्षा व्यवस्था का न होना, खाने-पीने की उचित व्यवस्था का अभाव इत्यादि मुख्य हैं। कारण जो भी हो जब तक जनता का सहयोग पर्याप्त मात्रा में पुलिस को नहीं मिलेगा तब तक पुलिस अपना कर्तव्य पालन ठीक ढंग से नहीं कर सकेगी। पुलिस एवं जनता के संबंधों में कुछ सुधार आया है। परंतु यह मानना पड़ेगा कि यह संबंध उस सीमा तक नहीं सुधरे हैं, जितने सुधरने चाहिए।

आज समाज में अनेक नई सामाजिक कुरीतियां फैल रही हैं। सांप्रदायिकता, दहेज प्रथा तथा नियम विहीनता इत्यादि। अक्सर सांप्रदायिक दंगे हो जाते हैं। इसके लिए भी पुलिस प्रशासन को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। यदि पुलिस इसको रोकने एवं शांति व्यवस्था कायम रखने में थोड़ा-सा भी बल का प्रयोग करती है तो इसे पुलिस के मनमानेपन की संज्ञा दी जाती है। यदि व्यवस्था कहीं ढीली पड़ गयी तो उसको ही गैर जिम्मेदार बताया जाता है। समाज में हर तरफ के दंगे, फसाद एवं अपराधों के लिए पुलिस जांचों को ही दोष दिया जाता है, उपेक्षिता किया जाता है। हर तरफ के अपराध नियंत्रण में उन्हें ही पूर्णरूप से जिम्मेदार माना जाता है। इस प्रकार एक तरफ पुलिसकर्मियों को तिरस्कृत किया जाता है, दूसरी तरफ इनसे निष्ठापूर्वक कर्तव्य पालन की भी आशा की जाती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुलिसकर्मियों के कर्तव्य पालन में जितनी भी समस्याएं आती हैं, उनका समाधान करना आवश्यक है।

1. अपराध की रोकथाम के लिए कानून में सुधार के साथ पुलिस के ढांचे में सुधार जरूरी है।

2. सामाजिक अपराधों एवं गंभीर किस्म के अपराधों को अलग किया जाए।

3. पुलिस के काम में राजनैतिक हस्तक्षेप बंद हो। न्यायिक प्रक्रिया के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता में सुधार हो।

4. कानून का अनुपालन कराने वाले तंत्र को चुस्त-दुरूस्त किया जाए।

5. समाज के अंदर हमेशा वैचारिक बहस होनी चाहिए कि वर्तमान समय में हमारा समाज किससे प्रभावित हो रहा है।

6. ब्रिटिश कालीन पुलिस कानून और प्रशिक्षण में बदलाव होना चाहिए।

7. आज जब भ्रष्टाचार और अपराध ही समाज का दर्शन हो गया है तो एक बार फिर हमारे देश को राजनेता नहीं, समाज सुधारकों की जरूरत है। जब तक समाज में परिवर्तन नहीं होगा तब तक कानून अकेले कुछ नहीं कर सकता है।

आर्थिक असमानता, गैर बराबरी, राजनीतिक-प्रशासनिक भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद को खत्म करने

पर ही इससे निजात मिलेगी।

8. आला पदों पर दो साल के लिए नियुक्ति होनी चाहिए। इससे पहले किसी भी हाल में अधिकारी को नहीं हटाया जाना चाहिए। पहले वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों का एक जगह पर निश्चित कार्यकाल हो। इसके बाद पुलिस का दायरा बढ़ाया जाना चाहिए। दबाव से मुक्ति बेहद जरूरी है।

9. पुलिस प्रशिक्षण पर जितना ध्यान देना चाहिए, वह नहीं दिया जा रहा है। इसके लिए सही बजट होना चाहिए।

10. पुलिसकर्मियों को कई बार 24 घंटे तक लगातार काम करते रहना पड़ता है, उनके काम की स्थितियां बदतर हैं। उन्हें पर्याप्त वेतन तो देना ही चाहिए।

संदर्भ :—

1. बेदी किरण 2007—'नेताओं के शिकंजे से मुक्त हो पुलिस' राष्ट्रीय सहारा, गोरखपुर।

2. धर कृष्णा मलय 2007—'सिर्फ पुलिस के सहारे नहीं थमेंगे अपराध' राष्ट्रीय सहारा, गोरखपुर।

3. राव जी बी, 1986—भारतीय पुलिस :—कुछ विचार, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो नई दिल्ली।

4. एस. अखिलेश 2006-07, पुलिस और समाज, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा।

लोक प्रशासन, पुलिस एवं जन सहभागिता

कैलाशनाथ गुप्त
पुलिस अधीक्षक,
केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सेवा निवृत्त)
डी-1-ए/115, डी ब्लाक, जनकपुरी,
नई दिल्ली-110058

ब्रिटेनिका के अनुसार ऐसी गतिविधियां जिनमें सरकार की नीतियां तथा कार्यक्रम क्रियान्वयन सम्मिलित हैं लोक प्रशासन कहलाती हैं। आधुनिक लोक प्रशासन में सम्मिलित हैं, सरकारी नीतियों के निर्धारण में कुछ जिम्मेदारी, परंतु मुख्य रूप से हिस्सा है योजना, आयोजन, निर्देशन, समन्वय और सरकारी गतिविधियों का नियंत्रण।

लोक प्रशासन रोजगार का एक क्षेत्र है जो सभी प्रकार के सरकार के लिए बराबर है, क्योंकि सभी राष्ट्रों को नीतियों के कार्यान्वयन संबंधी मशीनरी की आवश्यकता होती है। राष्ट्रों के अंदर लोक-प्रशासन को कार्य रूप में केंद्र सरकार तथा स्थानीय सरकारों द्वारा लाया जाता है तथा प्रांतीय और राज्य सरकारों द्वारा भी। विशेषकर उन लोगों द्वारा जिन्होंने राष्ट्रीय गतिविधियों में विशेषज्ञता हासिल की है।

लोक प्रशासन के सुधार हेतु जो अन्य ध्येय हैं, उनमें सम्मिलित हैं उनकी अर्थव्यवस्था में सुधार एवं उत्तमत, उनके संगठन के प्रारूप में सुधार तथा योजना, साधनों का निर्धारण, प्रशासन का न्यायपालिका से तालमेल तथा जवाबदेही को विकसित करने हेतु बजट की वृद्धि जिससे यह उपरोक्त कार्यों हेतु प्रधान अस्त्र सिद्ध हो सके।

राष्ट्रीय-क्षेत्रीय अथवा स्थानीय सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक महत्व के विषयों के प्रबंध को लोक प्रशासन कहा जाता है। यह प्रशासन के बृहत क्षेत्र की एक शाखा है। मार्क्स के शब्दों में, "प्रशासन चेतन उद्देश्य से की जाने वाली निश्चित क्रिया है। इसमें कार्यों को क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित किया जाता है और यह वांछित लक्ष्यों को संभव बना देने के उद्देश्य से साधनों का नपा तुला प्रयोग है।"

भारत में जन-सहभागिता

समाज की राजनीतिक प्रक्रियाओं में जनसाधारण के योगदान की आवश्यकता और अपेक्षा के बारे में विभिन्न लेखकों और अरस्तू तथा मार्क्स जैसे दर्शनशास्त्रियों द्वारा बार-बार व्यक्त किए गए मतों में बहुत भिन्नता है। लोकतांत्रिक राजनीतिक, संपूर्ण सिद्धांत और प्रक्रिया, सरकारी और लोक कार्यालयों में सत्ता और उत्तरदायित्व पर काबू पाने और भागीदारी होने में जनता के योगदान की व्यावहारिकता पर निर्भर करता है। जनता के योगदान की संकल्पना सर्वप्रथम यूनान में चालू हुई जहां सरकार के रूप में लोकतंत्र का उदय हुआ। प्राचीन यूनान के प्रत्यक्ष लोकतंत्रों में सभी महत्वपूर्ण निर्णय लोकप्रिय विधान सभाओं द्वारा लिए जाते थे और नागरिक राज्यों के मामलों में सक्रिय भाग लेते थे। तब से राज्य की बदलती हुई प्रक्रिया और भूमिका से लोकतंत्र का अर्थ और तत्व व्यापक एवं संकुचित दोनों होता गया है। राजनीतिक तत्व, सामाजिक और आर्थिक तत्व शामिल होने से अब लोकतंत्र का लक्ष्यार्थ व्यापक हो गया है।

अब स्वतंत्रता और समानता लोकतांत्रिक राज्य के दो लक्ष्य हैं। आधुनिक राज्यों के आकार और उनकी जनसंख्या में वृद्धि से प्रत्यक्ष लोकतंत्र का कार्य संचालन असंभव हो गया है। अब आधुनिक लोकतंत्र प्रतिनिधित्व संस्थाओं के माध्यम से जनता के अप्रत्यक्ष योगदान के सिद्धांत पर कार्य करता है।

वर्तमान समय में 'प्रशासनिक राज्य' के अनेक लेखकों ने लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रतिमानों के प्रति

प्रशासनिक राज्य की अनुक्रियाशीलता की समस्या पर चिंता व्यक्त की है। अधिकारीतंत्र और स्वेच्छाचारी दुरुपयोग से व्यक्तिगत अधिकार और स्वतंत्रता सुरक्षित रखने के लिए लोगों का अधिक सतर्क रहना और राजनीति में भाग लेना आवश्यक हो गया है। आधुनिक राज्यों को निर्णय लेने में प्रयुक्त कसौटी के लिए लोक कार्यों में अपनी भागीदारी प्रकट करता है।

योगदान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है। इसकी प्रकृति राजनीतिक, सामाजिक या प्रशासनिक हो सकती है। लोक प्रशासन में गतिशील और संस्थागत नागरिक के योगदान की प्रभावकारिता निम्नलिखित तीन कारकों पर निर्भर करती है।

(क) इसमें भाग लेनेवाला निकाय या अधिकरण इसे कितनी गंभरीता से लेता है;

(ख) क्या लोक प्रशासन उस निकाय से परामर्श लेता है; और

(ग) क्या लोक प्रशासन उस निकाय को कुछ कार्यक्रम सौंपता है।

प्रशासन में कई प्रकार से नागरिक की भागीदारी हो सकती है। यह उन सभी कार्यकलापों का उल्लेख करता है जिनसे प्रशासन-प्रक्रियाओं में नागरिकों के शामिल होने की बात का पता चलता है, अर्थात नीति-निर्धारण और कार्यक्रम आयोजन तथा विशेष लक्ष्य वर्गों के विकास के लिए बनाई गई नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन में योगदान। विकासशील समाज में लोगों के योगदान की परंपरागत परिभाषा (निर्णय लेने की प्रक्रिया में नागरिक का सक्रिय रूप में शामिल होना) नागरिक के पास समय, पहल करने और संसाधनों की कमी के कारण अक्सर विसंगती हो जाती है। इस प्रकार, नागरिक अपने लाभ के लिए बनाए गए सरकारी कार्यक्रमों में आवश्यक उत्साह या सहयोग प्रदान करने में असमर्थ रहता है। इसलिए, इन देशों में विभिन्न कार्यकलापों में भाग लेने के लिए सरकार को नागरिकों से अनुरोध करना चाहिए। राज्य न केवल सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण के लिए प्रयत्न करने में मुख्य भूमिका निभाता है, अपितु संस्थागत भागीदारी को भी बढ़ावा देने के प्रयत्न करता है।

नागरिकों की सहभागिता में कुछ पूर्व शर्तों की अपेक्षा की जाती है। संभवतः इनमें सबसे महत्वपूर्ण है शिक्षित राजनीतिक नेता, कर्तव्यनिष्ठ सरकारी कर्मचारी और जानकार तथा सहयोग करने वाली आम जनता। कर्मचारियों और नागरिकों दोनों को ही परस्पर समस्याओं और कठिनाइयों का ज्ञान होना सफल सहभागिता का महत्वपूर्ण योगदान है।

जनसहभागिता की समस्याएं

भारत जैसे विकासशील देशों के प्रशासन में लोगों की सहभागिता की मात्रा और सीमा औपनिवेशिक युग के दौरान प्रशासन की मूल प्रकृति तथा कार्य-संचालन की विशेषताओं से बहुत अधिक प्रभावित रही है। उस समय कानून और व्यवस्था बनाए रखना और राजस्व इकट्ठा करना ही प्रशासन के मुख्य कार्य थे। तब प्रशासनिक व्यवस्था और उसके कार्य काफी सीमा तक, जनता के लिए उनके क्षेत्रों के विकास के लिए वास्तविक शक्ति और उत्तरदायित्व हस्तांतरण हेतु प्रारंभ किया गया था। योजना-निर्धारण और कार्यान्वयन प्रक्रियाओं में नागरिकों की सहभागिता की आवश्यकता का उल्लेख भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में बार-बार किया गया है, जिसका आवर्ती विषय विकास योजनाओं में स्वयं जनता की सक्रिय प्रेरणा, सहभागिता और उन्हें शामिल करके भारतीय जनता का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास करना है।

नागरिक सहभागिता के साधन

आमतौर पर भारत में निम्न साक्षर स्तर, ज्ञान में कमी, दरिद्रता, निष्क्रियता और लोगों की आम

उदासीनता, नीति-निर्धारण प्रक्रिया में जनता की सहभागिता में बाधा पहुंचाते हैं। नागरिक, ज्यादा से ज्यादा, केवल अप्रत्यक्ष रूप से (क) गांव, ब्लाक तथा अन्य स्तरों पर पंचायत निकायों में राज्य विधान सभाओं और संसद में अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करके, (ख) राजनीतिक दलों, गुटों, युवा मंचों, विश्वविद्यालयों, स्वैच्छिक संस्थाओं, प्रेस योजना निकायों और सरकारी मशीनरी द्वारा आयोजित संगोष्ठियों, अध्ययनों और विचार-विमर्शों में शिक्षित नागरिकों के भाग लेने, और (ग) राजनीतिक दलों और अन्य संस्थाओं के माध्यम से नीति-निर्धारकों और योजनाकारों के सक्षम लोगों की आवश्यकताओं और गांवों में सामंजस्य स्थापित करके दिशा-निर्देश और नीति उद्देश्य तैयार करने में अपना योगदान दे सकते हैं।

नागरिक विचारों को राजनीतिक दलों, दबाव गुटों, प्रेस और स्वैच्छिक संस्थाओं जैसे विभिन्न अभिकरणों द्वारा भी व्यक्त किया गया है। संस्थागत सहभागिता से केंद्रीय और राज्य विधानमंडलों अथवा पंचायती राज निकायों आदि प्रशासकीय अभिकरणों के द्वारा सरकार की नीति तैयार करने में नागरिकों की सहभागिता का बोध होता है।

पुलिस का उदाहरण

लोक संपर्क के इन साधनों का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इसके क्रियाकलाप निर्मल, सच्चे स्पष्ट, प्रामाणिक और उत्तरदायी हों। निष्कर्ष के रूप में हम इस तरह कह सकते हैं कि लोक-संपर्क प्रशासन का दर्पण है। इसमें प्रशासन की आकांक्षाएं और उपलब्धियां एकसाथ दृष्टिगोचार होती हैं। वास्तव में पुलिस संगठन के लिए भी लोक-संपर्क आवश्यक है। सबसे पहले जनता को पुलिस के कार्य, उसके तरीके, नियमों से भलीभांति परिचित कराया जाना आवश्यक है क्योंकि एक पुलिस कर्मचारी जो भी ड्यूटी करता है और एक साधारण व्यक्ति अपने स्वयं के हित में जो कार्य करता है, इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। एक दृष्टि से 'प्रत्येक नागरिक एक पुलिसमैन है'। वह अपने जान-माल की स्वयं रखवाली करता है। इतना ही नहीं वह अपने परिवार के व्यक्तियों की और कभी-कभी अपने पड़ोसी तथा अपरिचितों के जानमाल की भी रखवाली करना अपना कर्तव्य समझता है। मोटेतौर पर पुलिसमैन भी यही कार्य करता है। आम जनता के जान -माल की रखवाली करना उसका मूल कर्तव्य है। जब किसी व्यक्ति की कोई चीज गुम हो जाती है तब वह उसकी तलाश करता है और सोचता है कि कौन ले गया होगा। अर्थात वह पुलिसमैन के समान थोड़े रूप में मामले की विवेचना करता है। परिवार का वरिष्ठ सदस्य यह व्यवस्था करता है कि घर के किस कमरे में कौन बच्चा रहेगा, कौन बच्चा किस टेबल का उपयोग करेगा, कौन बच्चा पैदल स्कूल जाएगा और कौन बस में जाएगा। इसी प्रकार पुलिसमैन भी सड़क पर ट्रैफिक की व्यवस्था करता है कि पैदल चलनेवाले को फुटपाथ पर चलना चाहिए, वाहनों को अपनी बाईं ओर से चलाना चाहिए आदि। इस प्रकार आम जनता को यह बताने की आवश्यकता है कि पुलिस के कर्तव्य लगभग वैसे ही हैं जैसे कि एक आम आदमी स्वयं अपने लिए करता है।

पुलिस की कार्यप्रणाली और कानूनी पक्ष से भी आम जनता को परिचित कराया जाना आवश्यक है। पुलिस द्वारा अभिरक्षा में रखे गए व्यक्तियों से पूछताछ में जो गोपनीयता बरती जाती है, उससे भी आम लोगों में यह भ्रम हो जाता है कि पुलिस पूछताछ के समय अमानवीय व्यवहार करती है। यह बात बहुधा सही नहीं होती। अपराधों की विवेचना में पुलिस द्वारा अपनाए जाने वाले वैज्ञानिक तरीकों के संबंध में जनता में लगातार प्रचार करने से इस प्रकार की भ्रांति का निवारण बहुत सीमा तक हो सकेगा।

जनसहयोग प्राप्त करने में कठिनाइयां

पुलिस की उपस्थिति एक सामाजिक आवश्यकता है। एक तरह से कहा जाए कि बिना पुलिस के समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जब पुलिस और समाज का इतनी निकटता का संबंध है, तो फिर उसे जनसहयोग प्राप्त करने में कठिनाइयां क्यों आती हैं? क्या दोनों एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखते हैं?

अक्सर समाचार-पत्रों, सेमिनारों व अन्य आयोजनों तथा गोष्ठियों के माध्यम से पुलिस को जनसहयोग या पुलिस जनता से संबंध विषय पर चर्चा की जाती है। तब एक ही बात सामने आती है कि पुलिस जनसहयोग नहीं ले पाती या पुलिस को जनता का सहयोग नहीं मिलता। इस कारण अमुक वारदात हो गई या पर्याप्त सहयोग के अभाव में अपराधी पकड़ा नहीं जा सका या माल बरामद नहीं हो सका।

ऐसे कौन-कौन से कारण हैं, जिनसे हमें जनता का पर्याप्त सहयोग प्राप्त करने में कठिनाइयां होती हैं। प्रश्न के उत्तर में जो सबसे बड़ी बात सामने आती है, वह है जनता के प्रति पुलिस का व्यवहार। अक्सर पुलिस अधिकारी व कर्मचारी अपनी भाषा से तथा व्यवहार से जनता के मन में घृणा उत्पन्न कर देते हैं। पुलिस अधिकारियों को चाहिए कि वे सर्वप्रथम जनता के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें, सदैव मदद की भावना रखें।

दूसरा कारण है, विलंब व पक्षपात। अक्सर यह शिकायत रहती है कि पुलिस कार्रवाई विलंब से की जाती है तथा उसमें भी पक्षपात किया जाता है। पुलिस प्रभावशाली व पैसे वाले लोगों के प्रति नरम तथा आम जनता के प्रति सख्त रवैया अपनाती है, जिससे जनता का सहयोग प्राप्त करने में काफी कठिनाई होती है। इसी तरह साक्षी व मुखबिर जो पुलिस के मददगार हैं, उनके प्रति भी पुलिस का व्यवहार खराब रहता है। अनावश्यक रूप से साक्षियों को थाने में बैठाकर रखा जाना व बार-बार गवाही हेतु बुलाना, उसकी सुख-सुविधाओं का ख्याल न करना भी जनसहयोग करने में बाधा पहुंचाते हैं।

राजनैतिक हस्तक्षेप व व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण भी अक्सर पुलिस को जनता के असंतोष का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी तो अनपेक्षित हस्तक्षेप के कारण पुलिस को पूर्णतः गलत कार्य भी करने पड़ते हैं जिससे जनता के मन में इस संगठन के प्रति नफरत सी होने लगती है। इसके अलावा कुछ पुलिस अधिकारी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में पड़कर जनता के साथ अन्याय कर बैठते हैं, आवश्यकता ऐसी है जिससे जनसहयोग बढ़ाया जा सके।

इसके अलावा पुलिस अधिकारी का व्यक्तिगत चरित्र व योग्यता भी जनसहयोग प्राप्त करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। जो योग्य व अच्छे पुलिस अधिकारी हैं उन्हें आज भी पर्याप्त जनसहयोग मिलता है अक्सर पुलिस अधिकारियों के खराब आचरण भी जनसहयोग प्राप्त करने में कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं।

पुलिस को सत्यनिष्ठा के बारे में जनता के मन में विश्वास उत्पन्न करके गलतफहमियों को दूर करना होगा। पुलिस जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत लोगों के जीवन को व्यवस्थित एवं नियमित कराने में सहयोगी है। जीवन का कोई ऐसा सामाजिक, भौतिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक पहलू नहीं है जो कि पुलिस की देखभाल में न आता हो। पुलिस केवल लोगों के जीवन की रक्षा ही नहीं कर रही है अपितु भूखों मरने वालों की, बीमारी से पीड़ित व्यक्तियों की, अनाथ बालकों की, भटके हुए राहगीरों की सेवा भी कर रही है। इसलिए जनता के बीच पुलिस का शिष्ट व्यवहार जनता व पुलिस के बीच सहयोग के मार्ग में आने वाली कठिनाइयां अवश्य दूर करने में सहायक होगा। यह बातें सहभागिता हेतु सभी विभागों में समान रूप से लागू होती हैं।

श्री जवाहरलाल नेहरू जी ने भी एक बार कहा था कि पुलिस वास्तव में सही और गलत के दोराहे पर खड़ा एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी जिम्मेदारी सही की रक्षा करना और गलत को पकड़ना है। अपनी सर्वश्रेष्ठ

भूमिका में वह अपने आप में ही एक संरक्षक, एक मार्गदर्शक, एक सामाजिक कार्यकर्ता तथा व्यवस्था और प्राधिकरण का प्रतीक है। किसी भी क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के लिए इतनी अधिक आशाओं को उचित रूप में पूरा कर पाना आसान कार्य नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में पुलिस तब तक फलीभूत नहीं हो सकती, जब तक उसे नागरिकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त न हो।

यह परम आवश्यक है कि पुलिस को लोगों का मित्र होना चाहिए। किसी भी बल की सफलता मुख्य रूप से उसकी सामान्य जनता का विश्वास जीतने और स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करने की क्षमता पर निर्भर करता है। यह कार्य केवल पुलिस का ही नहीं है। इस कार्य में समाज के नागरिकों को भी पूर्ण सहयोग देना चाहिए और इस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

नागरिकों के सहयोग के बिना कोई भी पुलिस कर्मचारी अपना काम समुचित रूप से नहीं कर सकता। नागरिकों को भी यह महसूस करना चाहिए कि पुलिस उनकी भलाई के लिए कार्य करती है। इसलिए पुलिस के साथ सहयोग करना और उनका रवैया मित्रतापूर्ण होना चाहिए।

आज पुलिस की जिम्मेदारियां और भार पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। मुख्य प्रश्न यह है कि पुलिस बल का लोगों में पुनः विश्वास कैसे पैदा हो, क्योंकि जब तक लोगों में यह विश्वास पैदा नहीं होता तब तक पुलिस बल पूरा प्रभावकारी नहीं होगा। तभी नागरिकों का सहयोग पुलिस को प्राप्त होगा और वे कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में पुलिस की मदद कर सकेंगे।

अब भी हमारी पुलिस के मुख्य कार्य अपराध निवारण और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखना है। पुलिस को अधिक से अधिक सामाजिक अनुशासन को बढ़ाने का प्रतीक समझा जाता है। इसके लिए मनोविज्ञान के निष्कर्षों के गहन अध्ययन पुलिस के तरीकों को आधुनिक बनाने, वैज्ञानिक साधनों के अधिकतम उपयोग और कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में नागरिकों का अधिकतर सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता है। एक सफल पुलिस वही मानी जाती है जो कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में नागरिकों का अधिकाधिक सहयोग लेने में सफल सिद्ध हो और इस ओर वह निरंतर प्रयास करती रहे। यदि देश में स्थायी शांति और व्यवस्था न हो तो इसका कोई लाभ नहीं कि सेना को कहा जाए कि वह जाकर सीमाओं की रक्षा करे। यह प्रमुख कार्य पुलिस का है परंतु नागरिकों का समर्थन व सहयोग प्राप्त न हो तो पुलिस की ताकत भी अधूरी रह जाती है। अतः कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में नागरिकों की अहम भूमिका है। कानून एवं व्यवस्था की नई-नई चुनौतियों का सामना करने हेतु नागरिकों का सहयोग प्राप्त होना परमावश्यक है।

कानून एवं व्यवस्था सबसे पहले कानून के प्रति आदर की भावना पर निर्भर करती है और उसके बाद पुलिस जैसे कानून को लागू करने वाले बलों की शक्ति पर। शक्ति का तात्पर्य हथियारों की शक्ति से नहीं वरन सरकार एवं नागरिकों का समर्थन मिलने से है। नागरिकों का यह परम कर्तव्य है कि गलत-फहमियों, गलत प्रचार एवं अफवाहों से दूर रहें और वास्तविकता का सामना करते हुए कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में पुलिस की मदद करें।

प्राधिकरण का प्रयोग केवल दंड या बंदूक के बल पर ही नहीं अपितु लोगों के प्रति बुनियादी समझबूझ रखकर और उनके प्रति सहानुभूति दिखाकर तथा नागरिकों का सहयोग प्राप्त करके ही किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि अपराधी के प्रति सहानुभूति दिखाकर उसे बच निकलने दिया जाए। परंतु आम जनता को यह महसूस करना चाहिए कि पुलिस उनकी मदद के लिए है। आपसी मेलजोल एवं नागरिकों के सहयोग से ही हम लोगों को धीरे-धीरे हिंसा से दूर रख सकते हैं और लोकतांत्रिक तरीकों से समस्याओं

का हल करना सीख सकते हैं।

कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने, सांप्रदायिक दंगों, नक्सली उपद्रव एवं आतंकवाद/उग्रवाद आदि पर नियंत्रण हेतु नागरिकों का कई प्रकार से सहयोग हो सकता है। जैसे कि सूचना प्राप्त करने के लिए स्थानीय लोगों की मदद की आवश्यकता पड़ती है। नागरिकों के लिए यह भी जरूरी है कि असामाजिक तत्वों द्वारा शरण मांगे जाने पर उनकी सहायता नहीं कि जाए और बाद में साक्ष्य देने की जरूरत पड़ने पर नागरिक इसके लिए पर्याप्त रूप से निर्भीक हों और तत्पर रहें। इसके लिए यह भी जरूरी है कि पुलिस निष्पक्ष हो और नागरिकों का दिल जीतते हुए कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में उनका सहयोग निरंतर प्राप्त करती रहे। पुलिस को समयोचित कार्रवाई करने में सफल होने हेतु नागरिकों का सहयोग प्राप्त होना बहुत आवश्यक है। पुलिस लोगों के बीच लोगों के मित्र की तरह रहे और स्थिति को स्पष्ट करने तथा उनका सहयोग मांगने के लिए उनसे कानून के किसी अंग के रूप में नहीं, बल्कि साक्षी की तरह बातचीत करे जैसे कि कोई मित्र करता है।

अतः इस चुनौतीपूर्ण समस्या के समाधान हेतु नागरिकों का दिल जीतना एवं ऐसा वातावरण बनाया जाना अति आवश्यक है जिससे नागरिक पुलिस को स्वयं सहयोग प्रदान करें और कानून-व्यवस्था बनाए रखने में भूमिका निभा सकें।

यह प्रयास होना चाहिए कि कानून और व्यवस्था बनाए रखने के संबंध में जब पुलिस कार्रवाई करे तो लगातार इस बात पर ध्यान रखे कि जनसमूह/नागरिकों को अपने साथ कैसे रखा जा सकता है।

पुलिस प्रशिक्षण में सुधार लाकर संपूर्ण पाठ्यक्रम को इस ओर इंगित करना भी आवश्यक है जिससे पुलिस नागरिकों का दिल जीतते हुए कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में उनका निरंतर सहयोग प्राप्त करने में सफल होती रहे और आए दिन जो मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले प्रकाश में आते रहते हैं, उनसे वे दूर रहें जिससे कि नागरिक अधिक से अधिक उन्हें सहयोग प्रदान करते रहें। पुलिस को अपने अनुसंधान को वैज्ञानिक सहायता द्वारा (साइंटिफिक ऐड) तत्परता से पूरा करना आवश्यक है। इसमें केंद्रीय न्यायिक वैद्यक विज्ञान प्रयोगशाला अथवा राज्य प्रयोगशालाओं की भी मदद लेते हैं, जिसमें नागरिक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

दिल्ली पुलिस ने तो अपना नारा ही 'आपके लिए, आपके साथ सदैव' रखा है। यह सिद्धांत दोनों अर्थात पुलिस एवं नागरिक के लिए आवश्यक है। नागरिकों को अवैतनिक विशेष पुलिस ऑफिसर (एच.एस.पी.ओ.) के रूप में लिया जा रहा है जिसका मुख्य ध्येय यह है कि नागरिकों का सहयोग प्राप्त किया जा सके और अपराध नियंत्रण एवं आतंकवाद दूर करने में पुलिस और नागरिकों के बीच की खाई भी दूर हो सके।

इसके अतिरिक्त पड़ोसी देख-रेख योजना (नेबहरहुड वाच सिस्टम) का भी सफलतापूर्वक कई वर्ष से दिल्ली पुलिस द्वारा संचलन किया जा रहा है, जिससे नागरिकों का स्वैच्छिक सहयोग अधिक से अधिक प्राप्त हो सके। यह दोनों ही योजनाएं सभ्य और सुशिक्षित नागरिकों के स्वैच्छिक सहयोग से काफी सफल सिद्ध हुई है और इसके आश्चर्यजनक नतीजे समाज के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत हुए हैं। यह सर्वविदित है कि पुलिस अकेले अपराध पर नियंत्रण नहीं पा सकती तथा अपराधियों तक नहीं पहुंच पाती जब तक नागरिकों का उसे पूर्ण सहयोग प्राप्त न हो और नागरिकों से उसे पूरी सूचनाएं प्राप्त न हों। अपराधों का सामना करने में या समाप्त करने की जिम्मेदारी अकेली पुलिस की ही नहीं, बल्कि समुदाय के प्रत्येक नागरिक की है। अकेली पुलिस यह कार्य-बिना नागरिकों के सहयोग के नहीं कर सकती है।

पुलिस योजना (पुलिसिंग) में भी नागरिकों की अहम भूमिका है। इससे सामाजिक नियंत्रण प्राप्त होता है और यह दोनों के हित में है कि वह एक-दूसरे की मदद

करें और समाज को अपराधमुक्त बनाएं। इससे जीवन की गुणवत्ता में विकास होगा और असामाजिक तत्वों पर नियंत्रण होगा।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह पुलिस व पूरे समाज के हित में है कि दोनों का निरंतर सहयोग बना रहे और शांति एवं व्यवस्था निरंतर कायम रहे, जिससे देश सुदृढ़ हो सके।

जो बातें पुलिस व नागरिक सहभागिता पर लागू होती हैं, वैसे ही लोक प्रशासन और जनसहभागिता पर भी समान रूप से लागू होती हैं।

निष्कर्ष के रूप में

विकास-प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता का अभिप्राय विकास-प्रशासन में निर्णय लेने की विभिन्न परिस्थितियों में आम जनता और लक्ष्यित जनता के सक्रिय सहयोग और इन कार्यों में उनके शामिल होने से है। इसमें सभी स्तरों, विशेषतः निचले स्तर पर विकास कार्यक्रमों की योजना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन में उनकी सक्रिय दिलचस्पी, उत्साह और सहयोग की अपेक्षा की जाती है। जनता की सहभागिता जन आंदोलन के रूप में होनी चाहिए, क्योंकि यह केवल विकास का साधन ही नहीं अपितु यह अपने आप में एक विकास लक्ष्य भी है। जनता की सहभागिता विकास की वास्तविक प्रक्रिया का, विशेषतः भारत जैसे विकासशील लोकतंत्र में पूरक है। इसमें राजनीतिक और प्रशासनिक, दोनों प्रकार के विकेंद्रीयकरण की अपेक्षा की जाती है। पंचायती राज की संस्थाएं, निचले स्तर के लोकतंत्र और लोकतांत्रिक विकास की संस्थाओं के रूप में स्थापित हो गई हैं। हाल ही में इस प्रणाली ने अपने पुराने-बंधन अपनी प्रकृति और उत्साह खो दिया है। इस समय पंचायती राज्य निकायों को उनमें निश्चित अंतराल के बाद चुनाव कराने, स्थानीय सरकारी संस्थाओं को पर्याप्त संसाधन और शक्ति उपलब्ध कराने, इन निकायों में अनिवार्य आरक्षण द्वारा महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों जैसे कमजोर वर्गों के सदस्यों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने, गुजरात की तरह नामांकन और सहयोजन करने, भूमि-सुधार का अधिक प्रभावी कार्यान्वयन करने, बढ़ते हुए उत्पादन और आधुनिकीकरण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आदि के द्वारा उत्पादकता में वृद्धि सहित समाज में रचनात्मक परिवर्तन करके दरिद्रता समाप्त करने, रोजगार के अवसर पैदा करने, हमारे बच्चों और युवकों को उद्देश्यपूर्ण शिक्षा देने और राष्ट्रीय एकता में बढ़ावा देने हेतु फिर से प्रचलन में लाने और इनकी कायाकल्प करने की आवश्यकता है।

प्राचीर विहीन कारागार

डा. मीरा सिंह
समाजशास्त्र विभाग,
आगरा कॉलेज, आगरा (उ.प्र.)

प्राचीर विहीन कारागार को खुला कारागार भी कहा जाता है। बंदियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्रदान करने का यह एक नूतन प्रयोग है। प्राचीरविहीन कारागार खुले प्राकृतिक पर्यावरण में स्थापित वह कारागार है जिसमें बंदियों को न्यूनतम सुरक्षात्मक व्यवस्था में विविध प्रकार के रचनात्मक कार्यों में इस प्रकार लगाया जाता है कि वे व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित हो सकें तथा यहां से मुक्त होने के पश्चात वे स्वतंत्र रूप से कोई व्यवसाय करके अपना स्वावलंबी जीवन-यापन करते हुए सामान्य समाज में समायोजित हो सकें। ये कारागार सामान्य परंपरागत कारागारों से भिन्न होते हैं। सामान्य परंपरागत कारागारों में जहां बंदियों को विशालकाय ऊंची-ऊंची दीवारों, कठोर अधिकारियों, पहरेदारों, रक्षकों एवं ताला-कुंजी, जंजीर-बेड़ियों व सींकचे से युक्त भयानक पर्यावरण में कठोर अनुशासनात्मक जीवन व्यतीत करना पड़ता है, वहीं प्रचीर विहीन कारागारों में बंदी उसी प्रकार स्वतंत्र जीवन-यापन करते है जैसे बाह्य समाज में।

यहां उनके स्वतंत्र जीवन-यापन को रोकने वाली न तो विशालकाय ऊंची-ऊंची दीवारें हैं और न ही कठोर अधिकारियों, पहरेदारों, रक्षकों एवं ताला-कुंजी, जंजीर-बेड़ियों व सींकचे से युक्त भयानक पर्यावरण में उन्हें कठोर अनुशासनात्मक जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है। इनमें प्रशासन व्यवस्था मूलतः विश्वास पर निर्भर रहती है। इन कारागारों में बंदियों को जिन उत्पादन कार्यों में लगाया जाता है, उनको अन्य मजदूरों की भांति पारिश्रमिक भी दिया जाता है। ऐसे वातावरण में बंदी एक ईमानदार मजदूर की ही भांति प्रोत्साहन का अनुभव करते हैं तथा राष्ट्र-निर्माण परियोजनाओं में अपनी अधिकतम क्षमता के अनुसार अपना योगदान देकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। अपने कार्य-प्रतिपादन में जहां एक ओर उनमें उत्तरदायित्वों की भावना स्वयं प्रादुर्भूत हो जाती है, वहीं दूसरी ओर वे सकारात्मक, अनुशासनात्मक व्यवहार करना सीख जाते हैं जो जीवन की प्रत्येक स्थिति में अत्यावश्यक होता है।

सम्प्रत्यात्मक विश्लेषण एवं प्रमुख विशेषताएं

प्राचीर विहीन कारागार वह नवीनतम सुधारात्मक, दंडात्मक व्यवस्था है जो परंपरागत कारागारों से पूर्णतया भिन्न होती है तथा जिसमें बंदियों को न्यूनतम सुरक्षात्मक व्यवस्था में सामान्य सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व वहन करने का ऐसा अवसर प्रदान किया जाता है कि वे अपने पूर्ववर्ती आचरण व व्यवहार में आवश्यक सुधार ला सकें और मुक्ति के उपरांत समाजोपयोगी सदस्य के रूप में अपने को पुनर्वासित कर सकें।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर खुले कारागारों की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है—

1. यह कारागार प्रणाली, आधुनिक कारागार-व्यवस्था में सुधार लाने की एक अत्याधुनिक योजना है।

2. यह कारागार प्रणाली परंपरागत कारागारों से पूर्णतया भिन्न होती है, क्योंकि इसमें कैदियों के स्वतंत्र जीवन को रोकने वाली विशालकाय दीवारें, ताला-कुंजी तथा सींकचे नहीं होते हैं।

3. इस कारागार व्यवस्था के अंतर्गत बंदियों पर बंधन यथासंभव शिथिल रखे जाते हैं ताकि वे समाज में स्वतंत्रतापूर्वक जीवन-यापन कर सकें। इसमें बंदी बाह्य समाज जैसे ही स्वतंत्र रहते हैं, क्योंकि कारागार प्रशासन का सारा कार्य बंदियों को सौंप दिया जाता है।

4. इस नवीनतम कारागार-व्यवस्था का प्रशासन

मूलतः बंदियों के प्रति विश्वास पर आधारित होता है।

5. इसके अंतर्गत बंदियों के अंदर उनकी व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के प्रति जिज्ञासा पैदा की जाती है। वे अपनी दैनिक उपयोग की वस्तुओं जैसे—भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था स्वयं ही करते हैं।

6. इन कारागारों में बंदियों को औद्योगिक प्रतिष्ठानों, कृषि-क्षेत्रों अथवा निर्माण स्थलों पर श्रम-कार्य के लिए रखा जाता है तथा उनके लिए उन्हें उचित पारिश्रमिक दिया जाता है।

7. इन कारागारों में बंदियों को शैक्षिक, नैतिक तथा विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दिये जाते हैं।

8. इन कारागारों में बंदियों में आत्मसंयम की भावना स्वयं उत्पन्न हो जाती है और वे अपने मित्रों, परिवारजनों एवं समाज के अन्य सदस्यों के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करना सीख जाते हैं।

9. इन कारागारों में अपेक्षाकृत स्वतंत्र जीवन-यापन करने से बंदियों में भावी जीवन के प्रति उदासीनता एवं थकान दूर हो जाती है तथा वे आशान्वित होकर स्वयं को समाजोपयोगी सदस्य बनाने का प्रयास करते हैं।

प्राचीर विहीन कारागारों के उद्देश्य

प्राचीर विहीन कारागार निम्नलिखित आधारभूत उद्देश्यों पर स्थापित हैं—

1. आशान्वित बंदियों के लिए इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करना है ताकि उनमें सामाजिक आत्मचेतना की भावना विकसित हो सके।

2. परंपरागत करागारों की दमनात्मक व प्रपीड़नात्मक दबावों अथवा त्रासों से कैदियों को दूर रखना।

3. बंदियों को चारदीवारी में बंद करने की अपेक्षा विविध प्रकार के सृजनात्मक कार्यों में लगाने की योजना प्रस्तुत करना।

4. बंदियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से इस प्रकार का शिक्षण प्रदान करना जिससे कि वे अपनी प्रतिशोध की भावना समाप्त कर सकें तथा उनमें सामाजिक चेतना, राष्ट्रभक्ति एवं स्वदेश प्रेम की भावना जाग्रत हो सके।

5. बंदियों को कर्तव्यपरायणता, आत्मसंयम एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करने की सीख देना।

6. बंदियों के प्रति विश्वास तथा उनमें अनुशासन एवं स्वावलंबन की भावना जाग्रत करना तथा स्वयं में सुधार करने का उनको अवसर प्रदान करना।

7. दंडावधि में ही कैदियों को समाज में समायोजित एवं पुनर्वासित करने के लिए तैयार करना।

8. कैदीपन की हीन भावनाओं एवं कारागारिक कलंकों एवं लांछनों से उत्पन्न जीवन-नैराश्यों, थकानों को दूर करके बंदियों में भावी जीवन के प्रति आशा-संचार की भावना विकसित करना।

9. ऐसे कारागारों का एक अन्य उद्देश्य परंपरागत करागारों से बंदियों की भीड़ कम करने तथा परंपरागत कारागार हेतु विशालकाय भवनों के निर्माण में होनेवाले व्ययों को कम करना भी है।

प्राचीर विहीन कारागार का उद्भव एवं विकास

आधुनिक काल में भारत तथा कई अन्य यूरोपीय देशों में कारागारिक सुधारात्मक प्रशासन के क्षेत्र में जो भी महत्वपूर्ण विकास हुए हैं, उसमें प्राचीरविहीन कारागारों की स्थापना का भी अपना एक अद्वितीय स्थान है। यूरोपीय देशों में, विशेषकर द्वितीय महायुद्ध के उपरांत ही इन कारागारों की स्थापना की गई, यद्यपि इस महायुद्ध के पूर्व से ही इन देशों में बंदियों को दिन के समय कारागार के बाहर कारागारिक अधिकारियों के नियंत्रण में कृषि-फार्मों अथवा अन्य कार्य-स्थलों पर श्रम-कार्यों में लगाया जाता था, किंतु रात्रिकाल में उन्हें परंपरागत कारागार की चारदीवारी के अंतर्गत रखा जाता था। परंतु प्राचीरहीन कारागार को स्थापित करने के संदर्भ में सर्वप्रथम सन 1950 में हेग ने बारहवें अंतर्राष्ट्रीय दंडात्मक एवं

सुधारात्मक सम्मेलन में विचार-विमर्श किया। इस सम्मेलन के कार्यक्रम में इस प्रश्न पर काफी बहस की गई कि परंपरागत कारागार के स्थान पर प्राचीरविहीन कारागार किस सीमा तक उपयुक्त सिद्ध होंगे। इस सम्मेलन में प्राचीर विहीन सुधारात्मक संस्थाओं की स्थापना के संदर्भ में कई आयामों पर विचार-विमर्श किया गया।

परंतु प्राचीर विहीन कारागार को स्थापित करने के लिए वास्तविक प्रयास संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्त्वधान में आयोजित जिनेवा के अपराध निवारण तथा अपराधियों के उपचार से संबंधित प्रथम सम्मेलन 1955 में किया गया। इस सम्मेलन में प्राचीरविहीन कारागार की संरचना एवं प्रकार्य से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों को निश्चित किया गया। पांच वर्षों के उपरांत अपराध-निवारण एवं अपराधियों के उपचार पर विचार-विमर्श करने के लिए दूसरा सम्मेलन लंदन में सन 1960 में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में भी प्राचीन विहीन कारागारों की संरचना एवं प्रकार्य से संबंधित कई महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित किए गए। इस प्रकार प्राचीरविहीन कारागारों के प्रकार्यात्मक सिद्धांत का विकास अंतर्राष्ट्रीय विचार-विमर्श प्रक्रिया के आधार पर ही किया गया है।

भारतवर्ष में भी बंदियों के लिए प्राचीरविहीन कारागारों को स्थापित किया गया है। औपचारिक रूप से 'ऑल इंडिया जेल मैन्युअल कमेटी' ने सन 1950 में बंदियों के जीवन में सुधार लाने के प्रयोजन से प्राचीर विहीन कारागारों की स्थापना करने पर विशेषरूप से बल दिया था। इस प्रकार भारत में प्राचीरविहीन कारागारों की स्थापना की धारणा संरचनात्मक अर्थ में एक नया विचार अवश्य है, किंतु प्रकार्यात्मक अर्थ में यह एक पुरातन धारणा है। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक काल में हमारे देश में बंदियों को परंपरागत कारागार के बाहर सार्वजनिक निर्माण के कार्यों जैसे—बांध का निर्माण, पुलों का निर्माण, नहरों की खुदाई, सड़क बनाना आदि में लगाया जाता था। परंतु ये कार्य किसी संगठित व्यवस्था के आधार पर संपादित नहीं किए जाते थे। अतः कारागार-प्रशासन को कई बार अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कथनीय है कि कारागार के बाहर सार्वजनिक कार्यों को करते समय बंदियों को अस्वाभाविक जीवन ही व्यतीत करना पड़ता था तथा उनकी प्रत्येक गतिविधि पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। परिणामतः बंदीजन रचनात्मक कार्यों के संपादन में न तो अधिक अभिरुचि लेते थे और न ही उनमें आत्म-परीक्षण की किसी भावना की उत्पत्ति होती थी।

परंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रथम दशक में परंपरागत दंडात्मक नीतियों में आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन लाए गए। बंदियों के प्रति अपनाए जाने वाले पुराने तरीकों को सर्प के केंचुल की भांति छोड़कर उनके सुधार एवं पुनर्वासन के लिए विश्व के अन्य देशों की भांति अनेक नवीनतम उपायों को अपनाने पर विशेषरूप से बल दिया जाने लगा। यही कारण है कि 'आल इंडिया जेल मैन्युअल कमेटी' ने सन 1950 में बंदियों के वास्तविक पुनर्वासन के लिए प्राचीरविहीन कारागार की स्थापना करने की सिफारिश की। इस कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में परंपरागत कारागारों की आलोचना करते हुए यह प्रतिवेदित किया है कि सामान्य व आकस्मिक अपराधियों को कारागार की विशालकाय चारदीवारी की बंद कोठरियों में रखकर तथा उन्हें शारीरिक यातनाएं देकर उनको न तो सामान्य या समाजोपयोगी नागरिक बनाया जा सकता है और न ही उनकी पूर्व—आपराधिक मनोवृत्तियों एवं आचरणों में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ही लाया सकता है। इसके विपरीत, खुले कारागारों की उपादेयताओं को उजागार करते हुए इस कमेटी ने यह प्रतिवेदित किया है कि प्राचीरविहीन कारागारों में ऐसे बंदियों को रखने से एक ओर जहां उनको अकर्मण्य जीवन व्यतीत करने से बचाया जा सकता है, वहीं दूसरी ओर उनको रचनात्मक कार्यों के संपादन में लगाकर स्व-अनुशासित एवं स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने का पाठ

पढ़ाया जा सकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस कमेटी ने अपराधी सुधार-योजना में खुले कारागारों के योगदानों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

आल इंडिया जेल मैन्युअल कमेटी, 1950 की सिफारिशों तथा अपराधशास्त्रियों एवं दंडशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित नवीन दंडात्मक दर्शन के प्रकाश में भारतवर्ष में वर्तमान रूप में सर्वप्रथम 'खुला कारागार' या शिविर अक्टूबर 1952 में उत्तर प्रदेश वाराणसी जनपद के चकिया में चंद्रप्रभा नदी पर बांध बनाने के लिए स्थापित किया गया। इस शिविर में उत्तर प्रदेश के विभिन्न कारागारों के दीर्घकालिक सजा पाए 200 बंदियों को लगाया गया था। इस शिविर की सफलता के पश्चात दूसरा शिविर अक्टूबर 1953 में इसी जनपद में नौगढ़ क्षेत्र में कर्मनाशा नदी के तट पर बांध बनाने के लिए स्थापित किया गया जो जनवरी 1955 में पूरा हो गया। इस बांध के निर्माण कार्य में 3,905 बंदियों ने मजदूर के रूप में कार्य किया था। तीसरा शिविर 1955 में ही पीलीभीत जनपद के शाहगढ़ गांव में साढ़े तेरह मील लंबी नहर खोदने के लिए स्थापित किया गया। इस नहर के पूर्ण होने पर यह शिविर नैनीताल जनपद में खटिमा स्थान से सात मील दूर नानक सागर बांध के निर्माण के लिए स्थानांतरित कर दिया गया था। इसके पश्चात एक छोटा शिविर सन 1956 में वाराणसी में वरुणा नदी पर पुल बनाने के लिए आयोजित किया गया। इन समस्त शिविरों की सफलता से प्रोत्साहित होकर एक स्थायी शिविर मिर्जापुर जनपद के घुरमा नामक स्थान में मार्च, 1956 में मिर्जापुर सीमेंट फैक्टरी में कार्य करने हेतु आयोजित किया गया। पुनः एक अन्य शिविर मार्च, 1960 में नैनीताल जनपद के सितारगंज में प्रारंभ किया गया। जहां 1,000 से अधिक बंदियों द्वारा 3,000 एकड़ भूमि पर कृषि की जाती है।

उत्तर प्रदेश में स्थापित प्राचीर विहीन कारागारों या शिविरों को संपूर्णानंद शिविर के नाम से संबोधित किया गया है। डा. संपूर्णनंद के प्रयासों एवं मानवतावादी दर्शन के परिणामस्वरूप ही इस प्रदेश में खुले शिविरों का सूत्रपात किया गया। उन दिनों डा. संपूर्णानंद इस राज्य के गृहमंत्री थे। वस्तुतः उत्तर प्रदेश में डा. संपूर्णानंद को जहां एक ओर खुले शिविरों का जनक माना जा सकता है, वहीं दूसरी ओर उन्हें बंदियों का मसीहा भी कहा जा सकता है। जब वाराणसी में वरुणा नदी पर पुल बनाने के लिए बंदियों को सामान्य श्रमिकों के साथ कार्य करने के लिए भेजा गया तब श्रमिकों के समूह में एक बड़ा भाग स्त्री-श्रमिकों का था। डा. संपूर्णानंद ने बंदियों एवं भूतपूर्व अपराधियों के प्रथम सम्मेलन में अपने उद्घाटन भाषण में इस शिविर की सफलता की सराहना करते हुए कहा था कि—"वाराणसी में सरैया के पास वरुणा पर पुल बनाते समय हमने काम करने के लिए बंदियों को बड़ें संकोच के साथ भेजा था। हमारे संकोच का कारण स्पष्ट था, यह एक ऐसा मिलाजुला शिविर था। जहां बंदियों को सामान्य मजदूरों के साथ कार्य करना था। इन मजूदरों में स्त्रियों की संख्या अधिक थी यद्यपि परिस्थिति ने इन बंदियों को अपराध करने के लिए बाध्य किया था किंतु मुझे विश्वास था कि उनमें तथा उनके पूर्वजों में मौजूदा मूल रूप से वर्तमान भारतीय संस्कृति उन्हें किसी भी प्रकार के प्रलोभनों में स्थिर रहने की शक्ति देगी। फिर भी इस प्रयोग के खतरे तो थे ही।" इस शिविर की प्रशंसा विदेशी लेखकों ने भी की थी।

एक भारतेतर लेखक के अनुसार उत्तर प्रदेश में, बनारस में लंबी अवधी के बंदी नगर के मध्य में, बिना निगरानी के सार्वजनिक निर्माण कार्य में लगे हुए थे और वे स्वतंत्रतापूर्वक स्त्री-पुरुष के साथ मिलते-जुलते रहते थे। इस प्रदेश में दो-तीन हजार बंदी सार्वजनिक निर्माण कार्य में नहर तथा बांध बनाने के कार्य में एक स्थान से दूसरे स्थान पर बराबर काम कर रहे थे।

उत्तर प्रदेश के बाद देश के अन्य राज्यों में भी प्राचीर विहीन कारागारों की स्थापना की गई। सन 2011 तक भारत के 15 राज्यों में 45 प्राचीरविहीन कारागारों की स्थापना हो चुकी थी। निम्नलिखित सारणी में भारत के

15 राज्यों में प्राचीरविहीन कारागारों की वास्तविक संख्या को दर्शाया गया है—

भारत के पंद्रह राज्यों में प्राचीरविहीन कारागारों की वास्तविक संख्या

क्र.सं.	राज्यों के नाम	प्राचीर विहीन कारागारों की संख्या
1.	आंध्र प्रदेश	2
2.	असम	1
3.	उत्तर प्रदेश	1
4.	कर्नाटक	1
5.	केरल	2
6.	गुजरात	2
7.	तमिलनाडु	2
8.	पंजाब	1
9.	मध्य प्रदेश	1
10.	महाराष्ट्र	5
11.	मिजोरम	1
12.	राजस्थान	23
13.	हिमाचल प्रदेश	1
14.	उत्तराखंड	1
15.	पश्चिम बंगाल	1
	योग	45

प्राचीर विहीन कारागारों का प्रशासनिक संगठन

परंपरागत बंद कारागारों की भांति प्राचीर विहीन कारागारों का प्रशासनिक कार्य संपादित करने के लिए इसकी एक सोपानात्मक संरचना होती है जिसके सबसे ऊपरी भाग में कारागार महानिरीक्षक होता है जो अन्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहायता से प्राशासनिक कार्य करता है। राज्य विशेष के समस्त प्राचीरविहीन कारागार, कारागार महानिरीक्षक के अधीनस्थ होते हैं। प्रत्येक खुले कारागार में प्रशासनिक कार्य संपादित करने के लिए एक अधीक्षक, एक उप-अधीक्षक तथा कई जेलर्स, डिप्टी जेलर्स एवं असिस्टेंट जेलर्स एवं वार्डन की नियुक्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त चिकित्सा अधिकारी, चिकित्सीय सहायक एवं अन्य चिकित्सीय कर्मियों की नियुक्ति की जाती है। कार्यालयीन कार्यों में संपादन हेतु लिपिकीय कर्मियों तथा इसी तरह शिविर के कार्यानुसार चतुर्थी श्रेणी के अन्य कर्मचारियों की भी नियुक्ति की जाती है। कृषि शिविरों में 'फार्म मैनेजर्स' की नियुक्ति भी की जाती है।

प्रत्येक कारागार के लिए एक अधीक्षक एवं उप-अधीक्षक का पद निश्चित रहता है किंतु जेलर्स पदों की संख्या निश्चित नहीं रहती है, बल्कि इनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है।

कारागार प्रशासन के संचालन हेतु सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों के अतिरिक्त बंदी समुदाय में से बंदी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भी नियुक्ति की जाती है।

प्राचीर विहीन कारागारों का मूल्यांकन

प्राचीरविहीन कारागार वर्तमान शताब्दी के अपराध निवारण तथा अपराधियों के उपचार के सुधारात्मक योजना पर आधारित हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य है—अपराधियों को कारागार की विशालकाय चारदीवारी से बाहर लाकर उन पर न्यूनतम निगरानी रखते हुए उनकी दंडावधि में ही उन्हें हर संभव प्रयत्नों द्वारा सहायता पहुँचाकर उनमें अंतर्निहित क्षमताओं तथा गुणों का विकास किया जा सके तथा उनमें एक उत्तरदायी नागरिक की भांति समाज के सामाजिक एवं वैधानिक नियमों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने की अभिवृत्ति का विकास संभव हो सके। कहना न होगा कि कारागार प्रशासन के इतिहास में सार्वभौमिक स्तर पर प्राचीरविहीन कारागार उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह स्वीकार किया जा रहा है। इस कारागार से होने वाले लाभों को हम निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं—

1. प्राचीरविहीन कारागार बंदियों को अधिकतम सुरक्षापूर्ण कारागार के दुष्परिणामों से बचाते हैं।

2. प्राचीरविहीन कारागार अधिकतम सुरक्षापूर्ण कारागार में कैदियों की होनेवाली भीड़ को कम करते हैं।

3. प्राचीरविहीन कारागारों में बंदियों को स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करने तथा आत्मचेतन, आत्मचिंतन, आत्मनियंत्रण, आत्मसंतोष करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

4. प्राचीरविहीन कारागारों में बंदियों को रचनात्मक कार्यों को संपादित करने का प्रशिक्षण दिया जाता हैं।

5. प्राचीरविहीन कारागार में बंदियों में आत्मपरिक्षण, आत्म-नियंत्रण व आत्म-अनुशासन की भावनाएं विकसित की जाती हैं।

6. प्राचीरविहीन कारागार, कारागार-प्रशासन तथा बंदियों दोनों के लिए ही आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद है। कारागार प्रशासन को बंदियों पर अपेक्षाकृत कम व्यय करना पड़ता है, जबकि बंदीजन अपने पारिश्रमिक से अच्छा धनार्जन कर लेते हैं।

7. सरकारी निर्माण परियोजना के लिए स्थिर श्रामिक प्राप्त हो जाते हैं।

8. प्राचीर विहीन कारागार बंदियों के पारिवारिक, सामाजिक तथा सामुदायिक संबंधों को टूटने से बचाते हैं।

प्राचीर विहीन कारागार की प्रणाली अपराधियों के सुधार और अपराध-निरोध की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण योजना हैं। समाज के साथ अपराधियों को समायोजित एवं अनुकूलित होने का अवसर प्रदान करने तथा उसके परिणामस्वरूप अपनी मनोवृत्तियों को सामाजिक हित की ओर मोड़ने की दिशा में प्राचीरविहीन कारागार की योजना अद्वितीय सुधारात्मक योजना है। इसके अंतर्गत समाज और अपराधी दोनों के हितों की पूर्ति होती है। प्राचीर विहीन कारागारों की सैद्धांतिक योजना में कोई विकार या दोष दृष्टिगोचर नहीं होता है। हां, व्यावहारिक प्रयोग में अवश्य इस योजना में कुछ विकास या दोष प्रकट होते हैं। यदि कारागार के अधिकारी मानवीय दृष्टिकोण और सेवाभाव से कार्य करें और समाज उनको सक्रिय सहयोग प्रदान करे तो निश्चय ही प्राचीर विहीन कारागारों की योजना अभियुक्त बंदियों का जीवन परिवर्तन करने में सहायक सिद्ध होगी।

प्राचीर विहीन कारागारों को और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सुझाव

प्राचीरविहीन कारागारों की प्रभावोत्पादकताओं को बढ़ाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तरों पर आयोजित होने वाले सम्मेलनों तथा संगोष्ठियों में समय-समय पर सुझाव विशेषज्ञों द्वारा समय-समय दिए जाते रहे हैं। भारत में 'सेंट्रल ब्यूरो आफ करेक्शनल सर्विसेज' ने विभिन्न राज्यों में स्थापित प्राचीर विहीन कारागारों की जांच करने के लिए सन 1969 तथा 1973 में दो 'इंटर स्टेट स्टडी टीम्स' का गठन किया था। इन 'स्टडी टीम्स' के विशेषज्ञों ने इन कारागारों में सुधार के लिए महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए गए थे परंतु उनके द्वारा दिए सुझावों के अतिरिक्त भी आज इस संबंध में और नए सुझाव देने की आवश्यकता है। अतः प्राचीर विहीन कारागारों को और अधिक प्रभावी बनाने के संदर्भ में निम्न सुझाव हैं—

1. भारत के प्रत्येक राज्य में चूंकि अब तक प्राचीर विहीन कारागारों की स्थापना नहीं की जा सकी है, अतः यह उचित होगा कि सरकार इन राज्यों में ऐसे कारागारों की शीघ्रातिशीघ्र स्थापना करे जिनमें अद्यापि इनका पूर्णतया अभाव है।

2. अखिल भारतीय स्तर पर प्राचीर विहीन कारागारों के लिए कार्यनीति का विकास करना आवश्यक है।

3. ऐसे कारागारों में प्रवेश पाने वाले बंदियों का चयन बहुत ही सतर्कतापूर्वक उनके विगत जीवन के अभिलेखों एवं उनके पारिवारिक जीवन के वैयक्तिक इतिहास को पर्यवेक्षित करने के उपरांत ही करना चाहिए।

4. ऐसे कारागारों में बंदियों का अधिकांश समय उत्पादन कार्यों में ही नहीं लगाना चाहिए बल्कि अन्य प्रकार के सुधारात्मक कार्यक्रमों में भी लगाना चाहिए।

5. रचनात्मक कार्यों के नाम पर इन बंदियों से बहुत कठोर कार्य भी नहीं कराने चाहिए, जैसा कि कुछ केंद्रों पर कराया जा रहा है। यह सदैव स्मरण रहना चाहिए कि प्राचीर विहीन कारागारों में बंदी सुधारने के लिए भेजे जाते हैं, न कि कठोर कार्य कराने के लिए।

6. अखिल भारतीय स्तर पर इन बंदियों के कार्य का समय निश्चित होना चाहिए। इन बंदियों से प्रत्येक स्थिति में 6 घंटे से अधिक कार्य नहीं लेना चाहिए।

7. प्रत्येक प्राचीर विहीन कारागार में इन बंदियों के लिए शिविर में आधुनिकतम आवास की व्यवस्था होनी चाहिए।

8. सभी प्राचीर विहीन कारागार बंदियों के लिए परामर्श तथा निर्देशन सेवाओं की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। कहना न होगा कि हमारे देश में कुछ ऐसे कारागार हैं जहां इन सेवाओं की कोई व्यवस्था नहीं की जा सकी है।

9. बंदियों की पारिश्रमिक दर अखिल भारतीय स्तर पर श्रम बाजार की दर पर निश्चित की जानी चाहिए। बंदियों द्वारा कुल अर्जित धन का 50 प्रतिशत भाग बंदियों के भोजनादि व्यवस्था के लिए कहा जा सकता है तथा शेष 50 प्रतिशत बंदियों के बचत खाते में जमा कर देना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक प्राचीर विहीन कारागार के निकटतम या उसके परिसर में ही बैंक या डाकघर की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि प्रत्येक बंदी अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुसार अपना रुपया लेता-देता रहे।

10. प्राचीर विहीन कारागार को प्रशासनतंत्र के अनुसार चलाने के लिए योग्य, कर्मठ एवं प्रशिक्षित अधिकारियों एवं कर्मचारियों को ही नियुक्त करना चाहिए। इन अधिकारियों के दल में अपराधशास्त्र, समाजशास्त्र, समाजकार्य, मनोविज्ञान तथा अन्य विशिष्ट समाज-विज्ञानों में प्रशिक्षित व्यक्तियों को ही नियुक्त करना चाहिए। लेखक अपने अनुभवात्मक ज्ञान के आधार पर यह उल्लेख करना चाहेगा कि भारत के जिन राज्यों में प्राचीर विहीन कारागार स्थापित किए गए हैं वहां ऐसे अधिकारियों का नितांत अभाव है।

11. भारत में अब तक किशोर-अपराधियों तथा महिला अपराधियों के लिए प्राचीर विहीन कारागारों में प्रवेश वर्जित है। परंतु लेखक का सुझाव है कि वयस्क पुरुष प्राचीर विहीन करागारों की भांति किशोर एवं महिला अपराधियों के लिए भी पृथक प्राचीर विहीन कारागारों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

12. ऐसे बंदियों को पुनर्वासित करने के लिए यह आवश्यक है कि उनके जीविकोपार्जन के लिए किसी धंधा या नौकरी प्राप्त कराने में सरकार उनकी मदद करे।

संदर्भ

1. देवेंद्र चंद्रा, ओपन एअर प्रीजंस, बोहरा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, 1984

2. हेग, बारहवें अंतर्राष्ट्रीय दंडात्मक एवं सुधारात्मक सम्मेलन 14-19 अगस्त, 1950

3. संयुक्त राष्ट्र संघ में आयोजित जिनेवा के अपराध निवारण तथा अपराधियों के उपचार से संबंधित प्रथम सम्मेलन, 1955

4. http://ncb.nic/PSI :2011/ Chapter-1, NCRB Bisan Stalistins India 2011-Chapteris-1

5. प्रो. श्यामधर सिंह, अपराधशास्त्र के सिद्धांत, सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी।

अपराध अन्वेषण में शारीरिक द्रव्यों का महत्व

अरुण कुमार पाठक
द्वारा श्री चक्रपाणि मणियार
113/4, शिवकुटी
(अपट्रान टी.वी. फैक्टरी के पीछे)
इलाहाबाद-211004 (उ.प्र.)

प्रत्येक मानव शरीर में विद्यमान द्रव्यों में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य ही होती है, जो अपराध अन्वेषण की दृष्टि से उसकी व्यक्तिगत पहचान का आधार होती है। मानव शरीर में पाए जाने वाले निम्न शारीरिक द्रव्यों का अपराध अन्वेषण में बड़ा महत्व है—

- रक्त
- वीर्य
- थूक
- मल
- पसीना
- पेशाब

1. रक्त

अपराध के घटनास्थल पर यह अक्सर प्राप्त होनेवाला द्रव्य है। हत्या, बलात्कार, शारीरिक हिंसा के मामलों में यह अवश्य ही घटनास्थल पर प्राप्त होता है। यह महत्वपूर्ण भौतिक/ जैविक साक्ष्य है।

लाल रंग का रक्त एक तरल पदार्थ है, तरल ऊतक है। यह मानव शरीर में शिराओं और धमनियों में बहता रहता है। वयस्क मनुष्य में रक्त उसके भार का 1/20 भाग होता है। स्वस्थ व्यक्ति में 4 से 6 लीटर तक रक्त पाया जाता है। रक्त का 70% भाग तरल एवं शेष 30% भाग ठोस होता है। रक्त के तरल भाग को प्लाज्मा कहते हैं। रक्त के ठोस भाग में कोशिकाएं, प्रोटीन तथा साल्ट होता है। कोशिकीय भाग में लाल रक्त कणिकाएं, श्वेत रक्त कणिकाएं एवं प्लेटलेट्स होते हैं।

लाल रक्त कणिकाओं (R.B.C's) में हीमोग्लोबिन के कारण ही रक्त का रंग लाल होता है। लाल रक्त कणिकाएं ही पूरे शरीर में ऑक्सीजन पहुंचाने का कार्य करती हैं। सामान्य पुरुषों में प्रति क्यूबिक मिमी. में 4.5 से 6.5 मिलियन तथा स्त्रियों में प्रति क्यूबिक मिमी. में 3.9 से 5.6 मिलियन लाल रक्त कणिकाएं पाई जाती हैं। नवजात शिशु में यह संख्या अधिक होती है। लाल रक्त कणिकाओं की संख्या शरीर में अधिक हो जाने से पॉलीसाइथीमीया वारा, हृदय रोग आदि बीमारी हो जाती है तथा इनकी संख्या कम हो जाने से एनीमिया, ल्यूकेमिया नामक बीमारी हो जाती है।

श्वेत रक्त कणिकाएं (W.B.C's) शरीर में प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखने का कार्य करती हैं। इनकी संख्या अधिक होने से शरीर में बैक्टीरियल इन्फेक्शन हो जाता है। इनकी संख्या कम होने से कालाजार, टायफाइड, टी.बी. रोग हो जाता है।

रक्त के शरीर से बाहर हवा के संपर्क में आने पर प्लाज्मा से फाइब्रिन अलग हो जाता है तथा जो तरल भाग बच जाता है, उसे सीरम कहा जाता है। फाइब्रिन रक्त के थक्का बनने में सहायक है। रक्त क्लॉट हो जाने के बाद वह सूख जाता है। समय के अनुसार रक्त के रंग में भी परिवर्तन हो जाता है। रक्तस्राव की समयावधि व उसके रंग में परिवर्तन को निम्न चार्ट में दर्शाया जा रहा है—

रक्त की समयावधि एवं रंग

क्र.सं.	समयावधि	रक्त का रंग
1.	ताजा रक्त	चमकदार लाल
2.	24 घंटे से कम	लाल-भूरा
3.	48 घंटे से कम	गहरा कत्थई अथवा काला

4.	वमन का रक्त	चाकलेटी
5.	फेफड़े का रक्त	झागयुक्त
6.	फोड़े का रक्त	मवादयुक्त
7.	माहवारी का रक्त	गहरे रंग का

इसके अलावा मृत्यु पूर्व एवं मृत्यु के पश्चात के रंग में भी अंतर होता है। इसे निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है—

मृत्यु पूर्व एवं मृत्यु पश्चात का रक्त

क्र.स.	रक्त की अवस्था	मृत्यु पूर्व का रक्त	मृत्यु पश्चात का रक्त
1.	रक्त का बहाव	अधिक	चमकदार लाल
2.	जमने का गुण	उपस्थित	लाल-भूरा
3.	थक्का	उपस्थित एवं लचीले तथा मजबूत	अनुपस्थित

अपराध स्थल पर रक्त के धब्बे निम्न जगहों पर पाये जा सकते हैं—

√ घटनास्थल से

√ पीड़ित से

√ हथियार से

√ वाहन से

√ अपराधी के भागने के रास्ते से

√ कपड़े, बिस्तर, परदे, कालीन आंतरिक वस्त्रों जैसी वस्तुओं से

√ फर्श, सीढ़ी, बाथरूम, वाश बेसिन से

√ फर्नीचर से, घर के दरवाजों से

√ घटनास्थल के बाहर मिट्टी, पत्थर, घास, सूखे पत्ते, शाखाओं से

घटनास्थल पर रक्त की मात्रा, रंग व स्थिति आदि से विभिन्न महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है—

1. मृतक के निकट रक्त की मात्रा यह इंगित करती है कि व्यक्ति घटना के उपरांत कितनी देर तक जीवित रहा।

2. रक्त का रंग समय के अनुसार परिवर्तित होता है जिसको देखकर मृत्यु के संभावित समय का अनुमान लगाया जा सकता है।

3. मृत्यु के पूर्व तथा मृत्यु के उपरांत के रक्त में भी विभेद करना संभव है। मृत्यु से पूर्व के रक्त का धब्बा खुरचने पर परतों में निकलता है जबकि मृत्यु के उपरांत का रक्त का धब्बा खुरचने पर चूर्ण के रूप में निकलता है।

रक्त के धब्बों की आकृति एवं पैटर्न से भी महत्वपूर्ण जानकारी हासिल होती है, यह निम्नवत है—

√ गतिमान वस्तु से गिरने वाली बूंद समतल पर तिरछी पड़ती है तथा विस्मयादिबोधक चिह्न बनाती है, जिसमें छोटा धब्बा चलने की दिशा इंगित करता है।

√ रक्त के लम्बवत गिरने की दिशा में वृत्ताकार धब्बे बनते हैं जो अधिक ऊंचाई से गिरने पर किनारों पर कुंठदंती हो जाते हैं।

√ छत पर रक्त के धब्बों की रेखा यह संकेत करती है कि कुल्हाड़ी/लाठी जैसे हथियार का प्रहार किया गया है।

√ फर्श पर स्मीयर शव के घसीटे जाने पर बनता है।

√ धमनी से रक्त प्रवाह में, शरीर से हथियार खींचने पर तथा रक्त कुंड को रौंदने की स्थिति में छींटे आते हैं। यदि रिसते घाव पर प्रहार किया जाता है तो छींटे मृतक के चारों ओर दृष्टिगत होते हैं।

√ खून की बूंद यदि 90^0 से भिन्न किसी अन्य कोण में फर्श को छुएगी तो वह बूंद टेढ़ी-मेढ़ी रहेगी। धब्बा भी नाशपाती फल का आकार प्राप्त करेगा

√ शिरा से रक्तस्राव की स्थिति में स्ट्रीक बनता है।

√ अत्यधिक रक्तस्राव की स्थिति में रक्त कुंड बनता है।

√ अण्डाकार/गदा समान धब्बे रक्त के तिरछा गिरने की दशा में प्राप्त होते हैं।

√ यदि रास्ते पर रक्त के चिह्न बराबर आगे बढ़ने पर पाए जाते हैं तो वे मृतक के शरीर को घसीटने की पुष्टि करते हैं।

रक्त से निम्न जानकारी प्राप्त हो सकती है—

1. रक्त मनुष्य का है या जानवर का,

2. रक्त शिशु का है या वयस्क का,

3. रक्त स्त्री का है या पुरुष का, (रक्त के श्वेत कणों में क्रोमेटिन (बार बाडी) की उपस्थिति स्त्री रक्त सिद्ध करती है, क्योंकि पुरुष कोशिकाओं में बार-बाडी नहीं होती है)

4. रक्त जीवित व्यक्ति का है या मृत व्यक्ति का,

5. रक्त हमलावर का है या उसके शिकार का,

6. रक्त शरीर के किस भाग का है,

7. रक्त का ग्रुप,

8. रक्त में किसी प्रकार की बीमारी का पता,

9. रक्त रजोधर्म का है या नहीं,

10. रक्त प्रसव का है या नहीं,

रक्त से डी.एन.ए. प्रोफाइलिंग करके व्यक्ति विशेष की पहचान की जा सकती है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रसव और गर्भपात के रक्त के धब्बे उल्व द्रव मिश्रित होते हैं, उसमें सामान्य रक्त की अपेक्षा प्रोटीन कम पाया जाता है। उसमें भ्रूण स्नेह तथा भ्रूण रोग भी पाए जाते हैं।

उल्टी वाले रक्त (रक्त वमन) के धब्बे जठर स्राव मिश्रित होने के कारण आम्लिक होते हैं तथा उसमें भोजन के कण पाए जाते हैं। मासिक धर्म के कारण निकले खून में योनि से निकले उपकला कण दिखाई देंगे।

रक्त की रासायनिक परीक्षा निम्न परीक्षणों द्वारा की जाती है—

(1) प्राथमिक परीक्षण

(क) बेंजिडीन परीक्षण

(ख) फिनाल्फथेलीन (केसल-मायर टेस्ट) परीक्षण

(ग) ल्यूकोमैलेचाइट ग्रीन परीक्षण

(घ) ग्वायक परीक्षण

इनमें सर्वाधिक प्रचलित बेंजिडीन परीक्षण ही है। इसमें ताजे बनाए हुए 10% बेंजिडीन ग्लेशियल एसिटिक एसिड में 20 आयतन हाइड्रोजन परॉक्साइड मिलाकर रक्त की बूंद पर डालने पर यदि नीला रंग या नीला-हरा रंग आए तो मानव रक्त होगा।

2. पुष्टि परीक्षण

(क) टाकायामा का हीमोक्रोमोजन क्रिस्टल परीक्षण

(ख) टीकमान का हीमिन क्रिस्टल परीक्षण

इन दोनों परीक्षणों से रक्त में हीमोग्लोबिन की उपस्थित की जांच की जाती है।

रक्त व उसके धब्बों का संग्रहण निम्न प्रकार से किया जाना चाहिए।

1. गीले रक्त को (यदि तुरंत जांच कराने की सुविधा उपलब्ध हो तो) स्वच्छ ड्रापर से किसी स्वच्छ शीशी या परखनली में उठाकर बर्फ से भरे थर्मस में रखकर सुरक्षित किया जा सकता है।

2. यदि तुरंत जांच की सुविधा न हो तो रक्त को स्वच्छ रुई या फिल्टर पेपर पर संकलित करके सुखा लेना चाहिए। छाया में ही सुखाया जाना बेहतर होगा।

3. रक्त का थक्का (धब्बा) यदि बड़ी वस्तु पर है जिसे उठाकर ले जाना संभव न हो, तो उस स्थान को जहां खून का धब्बा हो, तो उसे काटकर अलग सुरक्षित कर लेना चाहिए या रक्त के सूखने पर सूखे रक्त को स्वच्छ चाकू से खुरचकर साफ कागज में एकत्र कर लिया जाए।

4. कपड़े, चादर, दरी या सोफा आदि पर मिले रक्त के लिए उस रक्त वाले स्थान को काटकर सुखाकर जांच हेतु सुरक्षित किया जाए।

5. दीवार, दरवाजे पर यदि अल्प मात्रा में रक्त के धब्बे मिलें तो स्वच्छ रुई को नमक के घोल में डुबाकर उसे निचोड़कर उससे पोंछकर रक्त को उठा लिया जाए या साफ ब्लेड से भी रक्त को खुरचकर उठाया जा सकता है।

6. यदि रक्त का धब्बा किसी हथियार जैसे— लाठी, तलवार, टांगी, चाकू, रिवाल्वर, पिस्टल पर हो तो उसे हथियार सहित सुखाकर जांच हेतु सुरक्षित रखा जा सकता है।

7. मिट्टी से रक्त एकत्रित करते समय जमे रक्त को मिट्टी के 6-8 इंच गहराई तक खोदकर उठाना चाहिए तथा उस स्थान के 1-2 फीट की दूरी से सादा मिट्टी का भी नमूना लेना चाहिए।

रक्त के धब्बों की पैकिंग में निम्न सावधानी बरती जाए—

1.पीड़ित के रक्त लगे कपड़े और अभियुक्त के रक्त लगे कपड़े अलग-अलग पैक किए जाएं।

2. पैक करते समय दो धब्बों को आपस में मिलना नहीं चाहिए। लपेटते समय दोनों धब्बों के बीच कागज रख देना चाहिए।

3. कपड़ों को हवा रहित या पालिथीन में न रखें। ऐसा नहीं करने पर खून में बची हुई नमी उसी में रहेगी जिससे बैक्टीरिया उत्पन्न होंगे और धब्बे को चाट जाएंगे (नष्ट कर देंगे)। संभव हो तो लकड़ी का डिब्बा, दफ्ती या कागज को पैकिंग में प्रयोग किया जाए।

4. हथियार में लगे खून के धब्बे को रुई से ढककर सुरक्षित कर पैक किया जाना चाहिए।

मनुष्य के रक्त को चार वर्गों में बांटा गया है—

1. ए (A), 2. बी (B), 3. एबी (AB), 4. ओ (O)।

रक्त की कोशिकाओं में प्रतिजन (Antigen) तथा उसके द्रव भाग में प्रतिरक्षक (Antibodies) की पहचान की गयी है जिनका वर्गीकरण निम्नवत है—

रक्त कोशिकीय भाग		रक्त का सीरम भाग	
एंटीजेन ए	एंटीजेन बी	एंटीबॉडीज ए	एंटीबॉडीज बी

किसी रक्त समूह में कौन एंटीजेन तथा एंटीबॉडीज होंगे, इसको निम्न तालिका से समझा जा सकता है—

क्र.सं.	ब्लड ग्रुप	लाल रक्त कण में एंटीजेन	सीरम में एंटीबॉडीज
1.	A	A	एंटीबॉडीज B
2.	B	B	एंटीबॉडीज A
3.	AB	Aएवं B	अनुपस्थित
4.	O	अनुपस्थित	एंटीबॉडीज A एवं B एंटीबॉडीज

किसी भी व्यक्ति को रक्त आधान के लिए उसके रक्त समूह की जांच आवश्यक होती है। O (ओ) ग्रुप का रक्त किसी भी रक्त ग्रुप वाले व्यक्ति को दिया जा सकता है। इसलिए O ग्रुप को सर्वदाता कहा जाता है। इसी प्रकार AB रक्त ग्रुप वाले व्यक्ति को किसी भी ग्रुप के रक्त वाले व्यक्ति का रक्त दिया जा सकता है, अतः इसे सर्वग्राही कहते हैं। किसी भी ग्रुप के व्यक्ति उसके लिए जरूरी ग्रुप का रक्त न देने से, अन्य ग्रुप का रक्त देने से आपस में प्रतिक्रिया करके रक्त नष्ट हो जाता है तथा जमने लगता है।

रक्त परीक्षण द्वारा पितृत्व भी प्रमाणित किया जा सकता है। शिशु, मां और पिता के रक्त वर्गों का परीक्षण करके यह बताना संभव है कि विवादित शिशु का पिता वह व्यक्ति नहीं है। परंतु यह नहीं बताया जा सकता कि विवादित शिशु का पिता वही व्यक्ति है। इसे निम्न सारणी द्वारा समझा जा सकता है—

क्र.सं.	माता तथा पिता का रक्त समूह	बच्चे का रक्त समूह संभव रक्त समूह	असंभव रक्त समूह
1.	A × A	A एवं O	B एवं AB
2.	A × B	A,B,O एवं AB	कोई नहीं
3.	A × AB	A, B एवं AB	O
4.	A × O	A एवं O	B एवं AB
5.	B × B	B एवं O	A एवं AB
6.	B × AB	A, B एवं AB	O
7.	AB × AB	A, B एवं AB	O
8.	AB × O	A एवं B	A, B एवं O
9.	O × O	O	B, B एवं AB

रक्त में हिमोग्लोबिन का परीक्षण हिमोग्लोबिनोमीटर से किया जाता है। लाल रक्त कणिकाओं तथा श्वेत रक्त कणिकाओं का परीक्षण (गणना) हिमोसाइटोमीटर से किया जाता है।

2. वीर्य

बलात्कार, समलैंगिक तथा अप्राकृतिक मैथुन तथा

अन्य यौन अपराधों में वीर्य एक महत्वपूर्ण साक्ष्य है। यदा कदा यौन अपराधों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अपराध जैसे—हत्या आत्महत्या या गृहभेदन में भी वीर्य के पाए जाने की संभावना होती है।

वीर्य पुरुष जननांग से उत्पन्न शुक्राणु तथा शरीर की अन्य ग्रंथियों के स्राव का मिश्रण है। ताजा वीर्य गाढ़े द्रव के रूप में विशेष प्रकार की गंध लिए रहता है। वीर्य का रंग सामान्यतः मिल्की होता है। मसकस की मात्रा अधिक होने से इसका रंग सफेद व मवाद अधिक होने से इसका रंग पीला पड़ जाता है। वीर्य में शुक्राणु उपस्थित होते हैं जिसकी संख्या 100 लाख शुक्राणु प्रति मिली लीटर वीर्य होती है। एक साधारण स्वस्थ पुरुष एक समय में लगभग 3.5 मिली लीटर वीर्य स्खलित करता है।

एक शुक्राणु के चार भाग हैं—

1. सिर 2. केंद्रक 3. ग्रीवा 4. पूंछ। कंठ एक शुक्राणु की लंबाई लगभग 0.05 मिली मीटर होती है। इसे सरलता से माइक्रोस्कोप से देखा जा सकता है। वीर्य के द्रव अवस्था में रहने पर शुक्राणु जीवित रहते हैं जिन्हें माइक्रोस्कोप से चलते-फिरते तरल वीर्य में देखा जा सकता है। जब वीर्य सूख जाता है तो शुक्राणु मर जाते हैं। वीर्य सूखने पर भी शुक्राणु का आकार यथावत सुरक्षित रहता है। जब तक कि वीर्य के दाग युक्त स्थान या कपड़े को रगड़ा या धोया न जाए।

वीर्य साक्ष्य के रूप में पीड़ित एवं अभियुक्त के जननांगों, अंतः वस्त्रों एवं घटना स्थल पर यथा बिस्तर, चादर, तौलिया, दरी, कालीन, सोफा, वाहन की सीट आदि स्थानों पर पाया जा सकता है। ऐसे प्रकरणों में घटना घटने के स्थान के अनुरूप ही वीर्य तथा उसके धब्बों की तलाश की जानी चाहिए। पीड़ित तथा अभियुक्त के घटना के समय पहने हुए कपड़ों को तुरंत कब्जे में लेना चाहिए ताकि इन कपड़ों को धोया या जलाया न जा सके। बलात्कार में महिला की जननेंद्रिय तथा अप्राकृतिक मैथुन में पीड़ित की गुदा से वीर्य मिलने की संभावना रहती है जिसको चिकित्सक को रिपोर्ट देकर संग्रहित कराना चाहिए। बलात्कार करके हत्या करने वाले मामलों में मृत महिला के जननेंद्रिय में वीर्य की जांच करके उसे संग्रहित करने हेतु पोस्टमार्टम करने वाले चिकित्सक को रिपोर्ट देनी चाहिए।

जिन प्रकरणों में वीर्य के दाग की जांच कराने की आवश्यकता हो उनमें पीड़ित व अभियुक्त दोनों के लार या रक्त को चिकित्सक से एकत्र कराना चाहिए।

वीर्य के धब्बे लगे कपड़ों को भली-भांति छाया में सुखाकर अलग से पैक करना चाहिए, यह ध्यान रखें कि वीर्य के धब्बे वाले स्थान पर पैक करते समय मोड़ न पड़े, न ही रगड़ लगे। इसके अतिरिक्त वीर्य के धब्बे वाले स्थान को घेरकर A, B, C, D, E आदि से चिह्नित करना चाहिए। बाल, योनि स्राव आदि प्राप्त होने पर उन्हें भली-भांति सुखाकर साफ परखनली में अलग-अलग पैक करना चाहिए।

वीर्य का परीक्षण निम्न प्रकार होता है—

√ **सूक्ष्मदर्शी परीक्षण**—धब्बा युक्त स्थान से स्लाइड बनाकर उसे सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखकर देखने पर उसमें शुक्राणु दिखाई पड़ें तभी वह धब्बा वीर्य का माना जाएगा। इस धब्बे को अल्ट्रा वायलेट किरणों के प्रकाश में देखने से उसमें से नीली रंग की प्रतिदीप्रि शुक्राणु के दाग प्रदर्शित करते हैं।

√ **रासायनिक परीक्षण (एसिड फास्फेट टेस्ट)**—ऐसिड फास्फेट एक ऐसा एंजाइम है जो तरल वीर्य में मौजूद रहता है तथा उसकी सांद्रता किसी दूसरे शारीरिक द्रव्य की अपेक्षा वीर्य में अधिक रहती है। बेंटामाइन फास्ट ब्लू बी डाई सहित अल्फा नाफ्टिल फास्फेट के अम्लीय घोल के साथ अनुमानित धब्बे के सार को संसाधित करते हैं। गाढ़ा बैंगनी रंग दिखाई पड़ने पर यह निर्धारित होता है कि वीर्य के धब्बे में एसिड फास्फेट

एंजाइम मौजूद हैं।

√ वीर्य से सीरोलॉजिकल परीक्षण द्वारा रक्त समूह (A, B, AB एवं O) का निर्धारण किया जा सकता है।

√ वीर्य से डी.एन.ए. प्रोफाइलिंग भी की जा सकती है। अन्वेषणकर्ता चिकित्सक/ विधि विज्ञान प्रयोगशाला से पीड़िता व अभियुक्त के विषय में निम्न जानकारी हासिल कर सकते हैं—

√ पीड़िता की जांचकर्ता महिला चिकित्सक से प्राप्त होने वाली जानकारी

(क) पीड़ित महिला की उम्र क्या है?

(ख) उसके जननेन्द्रियों में कोई भीतरी या बाहरी जख्म है या नहीं?

(ग) पीड़ित महिला के योनि स्राव में वीर्य है या नहीं?

(घ) पीड़ित महिला के शरीर में वीर्य एवं लार के दाग तथा बाहरी बाल हैं या नहीं?

(ङ) पीड़ित महिला के साथ बलात्कार हुआ है या नहीं?

√ संदिग्ध/ अभियुक्त के जांचकर्ता पुरुष चिकित्सक से प्राप्त होनेवाली जानकारी

(क) संदिग्ध/अभियुक्त की उम्र क्या है?

(ख) क्या वह यौन क्रिया करने में सक्षम है?

(ग) संदिग्ध/ अभियुक्त के जननेंद्रिय या शरीर में किसी प्रकार का जख्म है या नहीं?

(घ) संदिग्ध/ अभियुक्त के रक्त का वर्ग क्या है?

√ विधि विज्ञान प्रयोगशाला से धब्बेयुक्त अंतः वस्त्रों, कपड़ों, बाल। योनि स्राव के परीक्षण से प्राप्त होने वाली जानकारी

(क) अंतः वस्त्रों/कपड़ों पर ए, बी, सी, डी से चिन्हित किए गए धब्बे वीर्य के धब्बे हैं या नहीं?

(ख) यदि वीर्य के धब्बे हैं तो संबंधित पुरुष का रक्त समूह क्या है?

(ग) योनि स्राव में वीर्य पाया गया है या नहीं?

(घ) प्राप्त सभी बालों के नमूने एक ही हैं या अलग-अलग एवं किससे कौन मिलते हैं?

यहां एक चीज को समझना आवश्यक है कि नपुंसकता का अर्थ क्या है? सामान्य रूप से कहें तो नपुंसकता का अर्थ है संभोग करने की असमर्थता, अर्थात जो लोग मैथुन नहीं कर सकते उन्हें नपुंसक कहा जाता है। लिंग का दंडायमान न होना अथवा क्षणिक समय के लिए दंडायमान होना भी नपुंसकता की श्रेणी में आता है। लिंग दंडायमान हो और उसकी लंबाई बहुत कम हो ताकि वह योनि में प्रवेश न कर सके तो भी वह नपुंसक ही कहलाएगा। ऐसे व्यक्ति को, जिसका लिंग दंडायमान हो, जो योनि में प्रविष्ट हो, बनावट में कोई कमी न हो परंतु वीर्य शुक्राणु का अभाव हो ऐसा व्यक्ति नपुंसक नहीं कहा जा सकता। ऐसे व्यक्ति में संतान उत्पत्ति की क्षमता का अभाव है परंतु वह नपुंसक नहीं है।

3. थूक

मनुष्य की लार या थूक की पहचान भी अपराध अन्वेषण में महत्वपूर्ण अंग है। घटनास्थल पर छोड़े गए सिगरेट या रुमाल, लिफाफे के गोदवाली सतह, चुइंगगम, काटने के घाव, हेलमेट आदि पर लार के धब्बे पाए जा सकते हैं। बलात्कार या यौन अपराध के मामलों में लार के धब्बे पीड़ित के शरीर पर या कपड़ों में मिल सकते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि लार या थूक एक द्रव पदार्थ है जो मुख में रहता है तथा जिसका स्राव लार ग्रंथियों से होता है। मानव लार में 99.5% पानी तथा 0.5% में इलेक्ट्रोलाइट्स, म्यूकस, ग्लायकोप्रोटीन्स, एंजाइम्स तथा बैक्टीरियारोधी तत्वों आई जी ए तथा लाइसोजाइम का मिश्रण होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति प्रतिदिन 0.75 से 1.5 लीटर लार का स्राव करता है।

लार (थूक) में एंजाइम-एमाइलेज या टायलिन रहता है। इसी एमाइलेज का परीक्षण करके लार की पहचान सिद्ध की जाती है।

लार से संबंधित व्यक्ति के रक्त वर्ग तथा

डी.एन.ए. की जांच की जा सकती है।

4. मल पदार्थ

समलिंगी संपर्क (यौन संबंध), गुदा मैथुन के मामलों में अक्सर कपड़ों पर मल पदार्थ मिलता है। घटनास्थल पर पीड़ित के कपड़ों अंतः वस्त्रों, अभियुक्त के अंतः वस्त्रों पर यह मल पदार्थ मिल सकता है।

मल में मसल फाइबर, कनेक्टिव टिश्यू, एपीथिलियल सेल, बीज का छिलका, अपचित खाद्य पदार्थ मिलते हैं। मांसाहारी व्यक्ति के मल में तंतु सेलुलोज भी मिलते हैं। मल में दुर्गंध इंडोल, स्केलेटोल तथा फैटी एसिड के कारण होती है।

मल को चिकित्सक से संग्रहित कराकर विधि विज्ञान प्रयोगशाला भेजकर परीक्षण से अपराधी की पहचान सिद्ध की जा सकती है।

5. पसीना

आपराधिक क्रियाकलाप के दौरान अपराधी अपने कपड़े घटनास्थल पर छोड़ देता है जिस पर पसीने के दाग हैं तथा पसीने की महक आती है। पसीने की महक से व्यक्ति के मूल की जानकारी हो जाती है। पसीने की महक भोजन, काम करने के तरीके आदि पर निर्भर करती है तथा पृथक-पृथक होती है। छोटे नमूने का कपड़े का टुकड़ा लेकर धुआं निकलने तक उसे गरम करने पर उस धुएं को सूंघने से पसीने की पहचान सिद्ध की जा सकती है।

6. पेशाब

इसकी गंध सड़े फल के समान मीठी होती है। यह गंध इसमें उपस्थित एसिटोन की वजह से होती है और मूत्र में बैक्टीरिया बढ़ जाने से इसमें दुर्गंध आती है। प्रायः मूत्र (यूरिन) की प्रक्रिया अम्लीय होती है। प्रायः मूत्र का रंग पीला होता है। यह मूत्र में यूरोक्रोम की उपस्थिति के कारण होता है। पीलिया के रोगी का मूत्र गाढ़ा पीला तथा फाइलेरिया के रोगी का मूत्र सफेद होता है। मूत्र में अधिक परिमाण में मौजूद यूरिया से इसकी पहचान होती है। पराबैंगनी किरणों में मूत्र के धब्बायुक्त स्थान पीली प्रतिदीप्ति देता है।

इसलिए अन्वेषणकर्ता को अपराध के घटनास्थल पर मिले शारीरिक द्रव्यों को संकलित करने में तथा परिरक्षित करने में सावधानी बरतनी चाहिए। शारीरिक द्रव्य अपराध पीड़ित व अपराधी की कड़ी को जोड़ने में सहायक हो सकते हैं तथा अकाट्य सबूत दे सकते हैं जिससे अपराधी को गवाह के मुकर जाने के बाद भी सजा दिलाई जा सकती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पुलिस की अन्वेषणात्मक शक्ति

डा. जनार्दन कुमार तिवारी
सहायक प्राध्यापक (विधि)
विधि संस्थान,
जीवाजी विश्वविद्यालय,
ग्वालियर म.प्र.—474011

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही दंड विधि के विकास का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने सुसंगठित समाज के रूप में अपने को स्थापित किया और वहीं से दंड विधि की आवश्यकता महसूस हुई है। सुसंगठित समाज में प्रतिस्थापित है कि जो भी व्यक्ति किसी व्यक्ति या समाज के प्रति कोई अपकार कारित करता है, ऐसे व्यक्ति पर अपकार के शिकार व्यक्ति को क्षतिपूर्ति या पुनर्स्थापन का दायित्व होता है। इसके साथ-साथ राज्य पर भी उस व्यक्ति पर दंड के अधिरोपण का दायित्व होता है जिससे कि समाज में शांति और व्यवस्था बनी रहे और समाज का प्रत्येक व्यक्ति अमन चैन से रह सके तथा एक-दूसरे के प्रति अच्छा बर्ताव करे।

राज्य का प्रमुख कर्तव्य है कि समाज में व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा तथा संपत्ति प्रदान करे जिससे कि एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके तथा शांति और व्यवस्था बनी रहे और इसकी जिम्मेदारी पुलिस पर रहती है। पुलिस का मुख्य कार्य अपराधों का पता लगाना तथा उसको रोकना है तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी भी उसी के ऊपर है। पुलिस का कार्य अपराधी व्यक्ति को गिरफ्तार करना तथा अपराध कारित होने की सूचना मिलने पर घटनास्थल पर जाकर अपराध से संबंधित साक्ष्यों और सबूतों को एकत्रित करना।

किसी व्यक्ति को उसके द्वारा कारित किए गए अपराध के लिए अभियोग लगाकर उसे दंडित करने का कार्य राज्य का है। इसके लिए राज्य ने अभियोजन विभाग की स्थापना की है जो किसी अभियुक्त के अभियोग की न्यायालय में संदेह से परे साबित करके उसे दंड दिलाने में मुख्य भूमिका निभाता है। अभियोजन का सहयोग करने के लिए पुलिस अन्वेषण का कार्य करती है, जिसमें किसी मामले की तह में जाकर सत्य का पता लगाना मुख्य उद्देश्य होता है। इस कार्य को पुलिस ही संपादित करती है। पुलिस जितनी बारीकी से किसी मामले की तहकीकात करेगी उससे मामले की सत्यता उजागर होती है।

हम सभी जानते हैं कि पुलिस समाज की सुरक्षा का प्रहरी है, समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखना, अपराधों की रोकथाम करना तथा अपराधियों को गिरफ्तार कर उन्हें कानून के हवाले करना पुलिस का कार्य है। पुलिस को इन कर्तव्यों के निष्पादन के लिए अपार/वृहद शक्तियां प्रदान की गई हैं। इन शक्तियों में अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार करना और अपराध का अन्वेषण करना तथा अपराधों की रोकथाम करना प्रमुख है। पुलिस को किसी अपराध का अन्वेषण करते समय अपराध की तह में जाकर सत्य का पता लगाना होता है। किसी अपराध का अन्वेषण करने के लिए पुलिस अधिकारी को कुशल, प्रशिक्षित एवं निष्ठावान होने की अपेक्षा की जाती है जिससे कि वह अन्वेषण की कार्रवाई को सफलतापूर्वक तय कर सके। अन्वेषण के समय पुलिस अधिकारी कठोर कदम उठाते हैं जिसमें गिरफ्तार व्यक्तियों के साथ अमानवीय एवं क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना, निर्दोष व्यक्तियों को तंग तथा परेशान करना सत्य को उजागर करने के लिए अभियुक्त पर बल का प्रयोग करना तथा उन्हें प्रताड़ित करना है। इन सभी कारणों से आम जनता की शिकायत रहती है कि पुलिस

का व्यवहार उनके प्रति उचित नहीं है। इसी कारण से पुलिस की कार्यप्रणाली पर आम जनता सवालिया निशान लगाती है और पुलिस को अन्वेषण के समय सहयोग करने को तैयार नहीं होती है। इसके बावजूद भी पुलिस को अन्वेषण की कार्रवाई करनी पड़ती है। पुलिस से अन्वेषण के समय नागरिकों के साथ मानवीय और सम्मानपूर्वक व्यवहार की अपेक्षा की जाती है, जिससे कि आम जनता की राय पुलिस के प्रति अच्छी बन सके। जिससे आम जनता का सहयोग पुलिस को पूर्ण रूप से प्राप्त हो सके। आपराधिक विधिशास्त्र का सुस्थापित सिद्धांत है कि प्रथम दृष्टया अभियुक्त को निर्दोष होने की उपधारणा की जाती है और यदि वह दोषी है तो उसे संदेह से परे साबित किया जाना आवश्यक है। विधिशास्त्र का यह भी सिद्धांत है कि "सौ व्यक्ति छूट जाएं, लेकिन एक निर्दोष व्यक्ति दंडित नहीं हो।" इन्हीं कारणों से किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करना एवं उसे न्यायालय के समक्ष पेश करने से पूर्ण आपराधिक विधि में अन्वेषण का प्रावधान किया गया है। आपराधिक कार्रवाई में पुलिस अन्वेषण ही अभियोजन पक्ष के मामले को गतिशीलता प्रदान करता है। अभियोजन की सफलता पुलिस अन्वेषण की पूर्णता एवं परिपक्वता पर निर्भर रहती है अर्थात अभियोजन का मामला पूर्णतया पुलिस अन्वेषण पर ही खड़ा होता है।

पाल बी. बेस्टन का कहना है कि "एक सफल अन्वेषणकर्ता के लिए आवश्यक है कि उसे आपराधिक विधि साक्ष्य के नियम, अन्वेषण के भाग, तरीके एवं उनकी तकनीक वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक सेवाओं का ज्ञान तथा व्यक्तियों एवं अपराधियों की कार्यप्रणाली की जानकारी हो"।

एच.एन. रिशबुद बनाम दिल्ली राज्य (ए.आई.आर. 1955 सु.को. 196) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अन्वेषण के दौरान सामान्य बातों के अलावा घटनास्थल पर जाकर आवश्यक साक्ष्य जुटाने पर विशेष बल देते हुए कहा कि यह अन्वेषण अधिकारी का कर्तव्य है। अन्वेषण में निम्न बातें शामिल हैं :

1. घटनास्थल पर पहुंचकर अभियुक्त सहित अन्य व्यक्तियों से पूछताछ करना और उनके बयान डायरी में दर्ज करना।

2. संबंधित स्थानों की तलाशी और अपराध में प्रयोग की गई या उससे संबंधित सामग्री कब्जे में लेना।

पुलिस को अन्वेषण करने की असीमित शक्ति प्राप्त है। इसका समर्थन उच्चतम न्यायालय ने हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (ए.आई.आर 1922 सु. को. 614) के वाद में किया है और निर्णित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 156 के अंतर्गत संज्ञेय अपराधों के अन्वेषण की पुलिस को असीमित शक्ति प्राप्त है और न्यायालय को इसमें दखलंदाजी या हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए परंतु जहां न्यायालय पाता है कि पुलिस इस धारा के अधीन अपनी शक्ति का उल्लघंन कर रही है या उसका अवैध तरीके से प्रयोग कर रही है तो ऐसी दशा में न्यायालय हस्तक्षेप करते हुए उचित आदेश पारित कर सकेगा।

पुलिस अन्वेषण के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने रजिंदर सिंह काटोच बनाम चंडीगढ़ प्रशासन तथा अन्य (ए.आई.आर, 2008 सु. को. 178) में कहा कि संज्ञेय अपराध के मामले में पुलिस अपने कर्तव्य से बाध्य है कि वह प्रकरण दर्ज करे। यदि अभियुक्त के विरुद्ध ऐसा आरोप है जिनका अन्वेषण पुलिस अधिकारी द्वारा बिना मजिस्ट्रेट की पूर्वानूमति से किया जा सकता है तो ऐसी स्थिति में भारसाधक अधिकारी द्वारा धारा 154 के अधीन अपराध की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना प्रारंभिक अनिवार्य है। न्यायालय ने कहा कि यह पता लगाने के लिए कि दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई सार है अथवा नहीं प्रथम रिपोर्ट करने के पूर्व प्रारंभिक जांच कर सकती है।

उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई संज्ञेय मामला कारित होता तो ऐसे मामले की प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के बाद पुलिस बिना मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति के अन्वेषण कर सकती है। प्रथम रिपोर्ट दर्ज करना पुलिस की बाध्यता है। इसके बाद ही अन्वेषण कर सकती है परंतु पुलिस अधिकारी संदेह के आधार पर अन्वेषण का कार्य प्रारंभ कर सकते हैं। यदि पुलिस अधिकारी का घटनास्थल पर बिना किसी सूचना के पहुंचने पर किसी साथी ने अन्वेषण के दौरान स्वयं आंखोंदेखी घटना के बारे में कथन किया हो तो ऐसी परिस्थिति में किए गए उपरोक्त कथन को प्रथम सूचना रिपोर्ट नहीं माना जाएगा।

जब कभी पुलिस अधिकारी को अपराध कारित होने की सूचना मिलती है तो अन्वेषण का कार्य उसी समय से आरंभ मान लिया जाता है। अन्वेषण से लेकर न्यायालय द्वारा अपना निर्णय सुनाए जाने तक पुलिस को तमाम सावधानियां रखनी पड़ती हैं। दांडिक कार्रवाइयों में अन्वेषण वह आधार स्तंभ होता है जिसके आधार पर अभियोग पत्र तैयार किया जाता है और उसी के आधार पर न्यायालय में विचारण की कार्रवाई का प्रारंभ होता है। इसी आधार पर कहा जाता है कि पुलिस अधिकारी मामले का अन्वेषण द्रुतगामी गति से करे। पुलिस अधिकारी बिना किसी सूचना के अन्वेषण कार्य प्रारंभ कर सकता है। अन्वेषण ईमानदारी और कर्तव्य परायणता के साथ करना चाहिए। अन्वेषण निष्पक्ष व्यक्ति तथा निष्पक्ष तरीके द्वारा किए जाने से जनता का विश्वास बना रहता है। अन्वेषण अधिकारी द्वारा यदि अन्वेषण में कोई चूक या गलती या जानबूझकर किसी को लाभ पहुंचाया जाता है तो इसका परिणाम होता है कि अभियुक्त का दोषमुक्त होना और यह पुलिस की कार्यप्रणाली और उसकी छवि को प्रभावित करता है। अन्वेषण का मुख्य उद्देश्य अपराध से संबंधित कुछ प्रश्नों की जानकारी एकत्रित करना कि अपराध से पीड़ित कौन है, आपराधिक घटना कहां पर घटित हुई, कैसे घटित हुई, घटना में कौन-कौन लोग शामिल थे, घटना किस समय घटित हुई, अपराधियों की पहचान करना इत्यादि है। अन्वेषण आपराधिक न्याय प्रणाली में सबसे महत्वपूर्ण और कठिन कार्य माना जाता है जिसका प्रभाव अभियुक्त पर व्यक्तिगत रूप से तथा समाज पर साधारण रूप से पड़ता है।

आपराधिक अन्वेषण की शक्ति

आपराधिक अन्वेषण का प्रारंभ पुराने समय से चला आ रहा है और इसका मुख्य कारण विधिक विचारण का प्रादुर्भाव होना माना जा सकता है। वर्तमान में आपराधिक न्याय प्रणाली में पूर्वतया स्थापित हो चुकी है कि किसी भी अपराध के घटित होने पर अन्वेषण की कार्रवाई करनी होगी, क्योंकि वर्तमान में विज्ञान और तकनीकी विकास होने के कारण यह जरूरी भी है। इसके लिए कानून में विस्तृत प्राधिकार अन्वेषण अधिकारियों को दिए गए है। जिसके तहत वह अन्वेषण की कार्रवाई संपादित करते हैं। पुलिस को अन्वेषण करने के लिए विधिक प्राधिकार है जो दंड प्रक्रिया संहिता—1973 के अध्याय 12 में वर्णित है। पुलिस अन्वेषण के समय साक्ष्यों को एकत्रित करती है जिससे कि अपराध घटित होने तथा अपराध कारित करने वाले की पहचान की जा सके। दंड प्रक्रिया संहिता—1973 की धारा—156 में पुलिस अधिकारी की अन्वेषण करने की शक्ति के बारे में बताया गया है जो इस प्रकार है—

1. कोई पुलिस थाने का भार साधक अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकता है जिसकी जांच या विचारण करने की शक्ति उस थाने की सीमाओं के अंदर के स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय 13 के उपबंधों के अधीन है।

2. ऐसे किसी मामले में पुलिस अधिकारी की किसी कार्रवाई को किसी भी प्रक्रम में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि वह मामला ऐसा था जिसमें ऐसे अधिकारी इस धारा के अधीन अन्वेषण करने के लिए सशक्त नहीं था।

3. धारा—190 में अधीन सशक्त किया गया कोई मजिस्ट्रेट पूर्वोक्त प्रकार के अन्वेषण का आदेश कर सकता है।

उपरोक्त वर्णित प्रावधानों से स्पष्ट है कि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी संज्ञेय मामले में केवल संदेह के आधार पर किसी मामले का अन्वेषण कर सकता है। यद्यपि संज्ञेय अपराध में पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण का प्रारंभ धारा—154 के अधीन प्रथम रिपोर्ट के आधार पर करती है।

अपराध कारित होने पर कोई भी व्यक्ति इसकी सूचना पुलिस को दे सकता है और पुलिस उस मामले का अन्वेषण करेगी। सामान्यतया संज्ञेय मामले में पुलिस अधिकारी बिना मजिस्ट्रेट के आदेश के अन्वेषण की कार्रवाई प्रारंभ कर सकते हैं लेकिन असंज्ञेय मामले में मजिस्ट्रेट का आदेश अन्वेषण करने के लिए जरूरी होता है। संज्ञेय अपराध गंभीर प्रकृति के होते हैं जबकि असंज्ञेय अपराध कम गंभीर प्रकृति के होते हैं। अतः संज्ञेय अपराधों में पुलिस को अन्वेषण की बृहद शक्ति प्राप्त है।

पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को अन्वेषण की शक्ति प्राप्त है लेकिन इसकी अनुपस्थिति में कोई भी पुलिस अधिकारी जो ऐसे अधिकारी से पंक्ति में ठीक नीचे का है और कांस्टेबल से ऊपर का है, थाने के भारसाधक अधिकारी के रूप में कार्य कर सकता है। राज्य सरकार किसी अन्य पुलिस अधिकारी को भी थाने को भारसाधक अधिकारी की शक्तियां प्रदान कर सकता है।

धारा—156 (2) में कहा गया है कि यदि किसी ऐसे पुलिस अधिकारी ने अन्वेषण किया है जिसको ऐसी शक्ति नहीं थी तब भी उसके द्वारा किया गया अन्वेषण अवैध नहीं होगा। उच्चतम न्यायालय ने एच.एन. रिशबुद बनाम दिल्ली राज्य (ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 196) में कहा है कि यदि किन्हीं आवश्यक उपबंधों का उल्लघंन करके किसी पुलिस अधिकारी ने अन्वेषण किया है और उसकी अंतिम रिपोर्ट पर संज्ञान ले लिया गया है तो उससे विचारण या जांच अवैध नहीं होगी जब तक की अभियुक्त व्यक्ति पर इसका प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

धारा—156 (3) के तहत किसी भी मजिस्ट्रेट ने यदि अन्वेषण का आदेश दिया है और अन्वेषण आरंभ हो गया है तो वह अपने इस आदेश को वापस नहीं ले सकता है। उसे कोई अंतर्निहित अधिकारिता नहीं है। (कन्हई लाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, नि.प. 1975 कलकत्ता 1)

यदि मजिस्ट्रेट पुलिस के अन्वेषण से संतुष्ट नहीं है तो वह पुनः अन्वेषण का आदेश दे सकता है। धारा 156 (3) के तहत मजिस्ट्रेट बिना किसी अपराध का संज्ञान लिए हुए ही अन्वेषण का आदेश देता है। यदि वह किसी अपराध का संज्ञान लेता है तो वह धारा—156 (3) के तहत अन्वेषण का आदेश पारित नहीं करेगा। पुलिस द्वारा अन्वेषण समाप्त किए जाने के पश्चात ही मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करता है। अन्वेषण समाप्त होने से पहले न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि पुलिस द्वारा अन्वेषण की शक्ति का दुरूपयोग न किया गया हो। (बिहार राज्य बनाम सलदनहा (1980) 1 ए.सी.सी. 554)

पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण के लिए प्रक्रिया—जब भी किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को यह संदेह होता है कि कोई संज्ञेय अपराध हुआ है या प्रथम सूचना प्राप्त हुई है तो वह अन्वेषण की कार्रवाई करेगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा—157 में अन्वेषण की प्रक्रिया के बारे में बताया गया है जो कि पुलिस अधिकारी के कर्तव्यों का बोध कराता है। धारा—157 (1) के अनुसार यदि संज्ञेय अपराध की सूचना प्राप्त होती है या अपराध कारित होना मालूम होता है तो ऐसी अपराध की रिपोर्ट संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट को दी जाएगी और पुलिस अधिकारी स्वयं या अपने अधीनस्थ को मामले एवं तथ्यों तथा परिस्थितियों

का पता लगाने के लिए स्वयं जाएगा या किसी को भेजेगा। यदि मामला गंभीर प्रकृति का नहीं है और पुलिस अधिकारी अन्वेषण के लिए समुचित आधार नहीं पाता है तो ऐसी परिस्थिति में पुलिस अधिकारी घटनास्थल पर जाकर अन्वेषण नहीं कर सकता है। लेकिन उपरोक्त परिस्थितियों में इस प्रकार की रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को देगा और उसमें यह उल्लेख रहेगा कि किन कारणों से उपधारा (1) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया है। ऐसी सूचना अपराध की सूचना देने वाले व्यक्ति को भी देगा कि वह मामले का न तो अन्वेषण करेगा और न ही अन्वेषण कराएगा।

दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2008 की धारा—11 द्वारा उपधारा (1) में परंतु अतः स्थापित किया गया है जिसके अनुसार बलात्संग के अपराध के संबंध में पीड़ित का कथन पीड़ित व्यक्ति के निवास पर या उसकी इच्छा के स्थान पर और यथासंभव किसी महिला पुलिस अधिकारी द्वारा उसके माता-पिता या संरक्षक या नजदीकी रिश्तेदार या उस क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्ता की उपस्थिति में अभिलिखित किया जाएगा।

दंड प्रक्रिया संहिता –1973 की धारा—157 में अन्वेषण की प्रक्रिया बताई गई है जिसका पालन पुलिस अधिकारी को करना है लेकिन पूर्ण रूप से इसका पालन पुलिस नहीं करती है। अन्वेषण में जानबूझकर विलंब करती है, मजिस्ट्रेट को सही समय पर रिपोर्ट नहीं करती है, इत्तिला देनेवाले को अन्वेषण न करने की सूचना भी नहीं देती है। पुलिस अधिकारी अन्वेषण प्रक्रिया का दुरूपयोग करते हैं और अभी तक करते चले आ रहे हैं। इन सबके ऊपर प्रभावी नियंत्रण का कोई तरीका नहीं है। सिर्फ यही एक उपाय है कि जब कभी पुलिस अधिकारी अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करके द्वेषपूर्ण भावना से अन्वेषण करता है तो अन्वेषण से व्यथित व्यक्ति उच्च न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद—226 के अधीन रिट पिटिशन फाइल कर सकता है और उच्च न्यायालय यदि उचित समझे तो पुलिस को अन्वेषण करने से रोक सकता है।

पुलिस अन्वेषण की कार्रवाई में तमाम तरह से लोगों को परेशान करती है, दुर्व्यवहार करती है, उनको अपमानित करती है तथा असम्मानजनक व्यवहार करती हैं, जिसके कारण अन्वेषण के समय पुलिस अधिकारी को जनता का सहयोग नहीं मिल पाता।

धारा 158 के अनुसार पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट को अंतरिम रिपोर्ट भेजता है अपने वरिष्ठ अधिकारी के माध्यम से जैसा राज्य सरकार इस संबंध में आदेश या निर्देश दे। मजिस्ट्रेट अंतरिम रिपोर्ट मिलने पर चाहे तो अन्वेषण का आदेश दे सकता है या ठीक समझे तो वह मामले की प्रारंभिक जांच के लिए या उसको निपटाने के लिए तुरंत कार्रवाई कर सकता है या अपने अधीनस्थ मजिस्ट्रेट को कार्रवाई के लिए प्रतिनियुक्त कर सकता है (धारा—159, दंड प्रक्रिया संहिता—1973)

एस.एन. शर्मा विपिन कुमार तिवारी (ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 786) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा—156 (3) तथा धारा—159 के तहत मजिस्ट्रेट की शक्तियों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि इन धाराओं का मुख्य उद्देश्य है कि संज्ञेय अपराध में पुलिस अन्वेषण करने की शक्ति मजिस्ट्रेट के नियंत्रणाधीन नहीं है। केवल उन्हीं मामलों में मजिस्ट्रेट पुलिस अन्वेषण का आदेश दे सकता है जहां पर पुलिस धारा 157 के उपबंधों के अनुसार अन्वेषण नही करती है। पुलिस अन्वेषण के समय अपराध में संलिप्त व्यक्ति तथा अभियुक्त को गिरफ्तार कर उससे पूछताछ कर सकती है। पुलिस अन्वेषण के समय इस शक्ति का दुरूपयोग करती है, अपराध के अभियुक्त व्यक्ति तथा सहभागी व्यक्ति को परेशान करती है तथा उन सबके साथ दुर्व्यवहार करती है। ऐसे व्यक्तियों को कई दिनों तक बिना मजिस्ट्रेट के आदेश के अवैध रूप से निरुद्ध किए रहती है। भारत जैसे इस महान देश में जहां पर अधिकतर जनता अनपढ़ एवं निरक्षर है, अपने अधिकारों को नहीं जानती है, वहां पर पुलिस द्वारा उनके ऊपर अत्याचार किया जाना

स्वाभाविक है। पुलिस अन्वेषण के नाम पर ऐसे व्यक्तियों को कई दिनों तक तक बिना मजिस्ट्रेट के आदेश के थाने पर बैठाए रखती है और तमाम तरह से उन पर दबाव बनाती है, जिससे कि परेशान होकर ऐसे व्यक्ति के परिवार के सदस्य पुलिसवालों को धन मुहैया कराते हैं। पुलिस किसी अपराध में संलिप्त व्यक्ति को संदेह के आधार पर निरपराध व्यक्ति को गिरफ्तार कर लेती है जिसकी गिरफ्तारी का कोई युक्तियुक्त प्रतियुक्त औचित्य नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने जोगिंदर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1994) 4 एस.सी.सी. 260) में पुलिस अन्वेषण एवं जांच के दौरान एक व्यक्ति की गिरफ्तारी के संबंध में मार्गदर्शन सिद्धांत विहित किया है जिससे कि व्यक्ति भी अवैध गिरफ्तारी से संरक्षा की जा सके। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी व्यक्ति को किसी अपराध में सहयोगी होने के संदेह मात्र पर गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है, किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करते समय पुलिस अधिकारी को इस बात से संतुष्ट होना आवश्यक है कि उसकी गिरफ्तारी करने का युक्तियुक्त औचित्य या आधार है। न्यायालय ने इस संबंध में निम्नलिखित सिद्धांत निहित किए हैं—

1. गिरफ्तार व्यक्ति को यदि वह प्रार्थना करता है तो उसमें किसी ऐसे मित्र, संबंधी या किसी अन्य व्यक्ति को जिसे वह जानता है या जिसे उसके कल्याण में हित हो सकता है, उसकी गिरफ्तारी की तथा उस स्थान की जहां वह विरुद्ध है यथासंभव शीघ्र सूचना दे।

2. पुलिस अधिकारी गिरफ्तार व्यक्ति को थाने में लाने पर यह बताए कि उसे कौन-कौन से अधिकार प्राप्त हैं।

3. पुलिस डायरी में इस बात की प्रविष्टि की जाएगी कि इस संबंध में किस व्यक्ति को सूचित किया गया था।

उपरोक्त विहिन सिद्धांत का पुलिस अधिकारी सामान्यतः पालन नहीं करते हैं। गिरफ्तारी की सूचना भी नहीं देते हैं तथा पुलिस डायरी में इस बात की पुष्टि भी नहीं करते हैं। पुलिस अधिकारी अपनी शक्ति का न्यायसम्मत प्रयोग नहीं करते हैं। पुलिस अधिकारी को शांति, धैर्य एवं संवेदनशील होकर कार्य करना चाहिए, ऐसी अपेक्षा की जाती है लेकिन ऐसा होता नहीं है। पुलिस को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को न तो उत्पीड़ित किया जाए और न ही यातना कारित की जाए, क्योंकि उत्पीड़न और यातना कारित करने से व्यक्ति के मानवाधिकारों एवं मूल अधिकारों का हनन होता है। जिसकी संविधान में मनाही की गई है।

डी.के.बसु बनाम स्टेट आफ वेस्ट बंगाल (ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 610) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को किसी प्रकार का उत्पीड़न या क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार चाहे वह जांच के दौरान प्रश्न पूछने के दौरान या अन्य स्थान पर हो अनुच्छेद—21 का अतिक्रमण करता है, अतः वर्जित है। पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु होना विधि शासन द्वारा शासित सभ्य समाज में सबसे खराब अपराध है। अन्वेषण एवं जांच के दौरान पुलिस को क्रूर, अमानवीय एवं अव्यावहारिक आचरण करने का कोई अधिकार नहीं है, ऐसे मामले में पीड़ित व्यक्ति राज्य से प्रतिकर प्राप्त करने का हकदार है।

डी. के वसु बनाम स्टेट आफ वेस्ट बंगाल के मामले में राज्य एवं केंद्र सरकार की जांच एवं सुरक्षा ऐजेंसियों के लिए गिरफ्तारी और निरोध के मामले में अनुसरण करने वाले मार्गदर्शन विहित सिद्धांत निम्न हैं।

1. गिरफ्तारी या जांच करने वाले कर्मचारी का पदनाम, सही एवं स्पष्ट रूप से प्रकट होना चाहिए। ऐसे सभी पुलिस कर्मचारी का जो गिरफ्तार व्यक्ति से पूछताछ करते हैं, उनका विस्तृत विवरण रजिस्टर में दर्ज होना चाहिए।

2. गिरफ्तार करने वाला पुलिस अधिकारी

गिरफ्तारी के समय एक मेमो बनाएगा जिसमें कम से कम दो साथियों द्वारा प्रमाणित होगी जो कि गिरफ्तार व्यक्ति के परिवार से हो सकते हैं या उसके मोहल्ले के प्रतिष्ठावान व्यक्ति होंगे।

3. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के परिजनों अथवा मित्रों को ऐसी गिरफ्तारी की सूचना दी जाए।

4. गिरफ्तारी के समय, स्थान, अभिरक्षा के स्थान की सूचना उसके मित्र को या यदि वह जिले से बाहर रहता है तो विधिक सहायता संस्था या उसे क्षेत्र की पुलिस केंद्र के माध्यम से सूचना 8 से 12 घंटे के भीतर अवश्य दी जाए।

5. गिरफ्तार व्यक्ति को इस बारे में जानकारी होनी चाहिए कि उसकी गिरफ्तारी की सूचना यथाशीघ्र किसको दी गई है।

6. गिरफ्तार व्यक्ति के निरोध में स्थान या गिरफ्तारी की सूचना डायरी में दर्ज करनी होगी तथा यह भी दर्ज करनी होगी की सूचना उसमें किस मित्र को दी गई है उसका नाम, पुलिस अधिकारी का नाम जिसने गिरफ्तार किया है।

7. गिरफ्तार व्यक्ति की प्रार्थना पर उसका चिकित्सीय परीक्षण कराया जाए।

8. गिरफ्तार व्यक्ति के 48 घंटे में प्रशिक्षित डाक्टरों द्वारा राज्य या केंद्र राज्य क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवा के निदेशक द्वारा अनुमोदित डाक्टरों के पैनल में से किसी डाक्टर द्वारा डाक्टरी जांच करानी चाहिए।

9. गिरफ्तार व्यक्ति को पूछताछ के दौरान अपने अधिवक्ता से मिलने दिया जाए। यद्यपि पूछताछ के दौरान में यह आवश्यक नहीं है।

10. सभी जिलों में और राज्यों के हेड क्वार्टर में पुलिस नियंत्रण कक्ष स्थापित किया जाए जिसमें गिरफ्तार व्यक्ति की सूचना रखी जा सके या प्रदर्शित होती रहे।

11. गिरफ्तारी के सभी दस्तावेज जिसमें मेमो भी शामिल है, की प्रतिलिपिय क्षेत्र के मजिस्ट्रेट को रिकार्ड के लिए भेजी जाएगी।

डी.के. बसु के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि पुलिस को अपने शब्दकोश से यातना शब्द को निकाल देना चाहिए, क्योंकि यह मन पर लगने वाला ऐसा घाव है जो छुआ जा सकता है लेकिन जिसकी भरपाई नहीं हो सकती है।

अन्वेषण के समय साक्षियों की हाजिरी की अपेक्षा करना करने की शक्ति—कोई भी पुलिस अधिकारी जो किसी अपराध का अन्वेषण कर रहा है, किसी व्यक्ति की जिसे उस मामले के तथ्यों की जानकारी है या उसका कथन लेना जरूरी है तथा वह उसी थाने या निकटवर्ती थाने के क्षेत्र में रहता है, अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए आदेश दे सकता है। यदि ऐसी जानकारी रखने वाला व्यक्ति 15 वर्ष से कम आयु का है या कोई स्त्री है तो उसे केवल उसी स्थान पर बुलाया जा सकता है जहां पर निवास करता है या करती है। (धारा—160 दंड प्रक्रिया संहिता 1973)। जबकि हकीकत में उपरोक्त प्रावधानों का पुलिस अधिकारी वास्तविक रूप से पालन नहीं करते हैं। प्रायः समाचार-पत्रों के माध्यम से जानकारी मिलती रहती है कि पुलिस वाले 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति या स्त्रियों को थाने पर ही बुला लेते हैं जिसकी कानूनन मनाही है। पुलिस की छवि इस मामले में ज्यादा अच्छी नहीं है। वह भी इस भ्रष्टाचार में युग में जहां पर चारों तरफ भ्रष्टाचार फैला हुआ है, पुलिस भी इससे अछूती नहीं है। श्रीमती नंदनी सत्यथी बनाम पी.एल. दानी (ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 1025) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि किसी स्त्री को उसके निवास स्थान से अन्यत्र अर्थात पुलिस थाने में हाजिर होने के लिए विवश किया जाता है तो इससे धारा—160 के उपबंधों का उल्लंघन होता है और यह एक दंडनीय कार्य होगा। अरुण गुलाब गवकी बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006 कि.ला.ज. 2615 (बंबई) के मामले में बंबई उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अन्वेषण अभिकरण

आवश्यकतानुसार किसी साक्षी को अन्वेषण के लिए एक से अधिक स्थान पर उपस्थित रहने के लिए आदेश दे सकता है और ऐसा साक्षी जो अन्वेषण में मदद कर रहा है इस आधार पर दूसरे स्थान पर जाने से मना नहीं कर सकता है कि उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता का हनन हुआ है।

पुलिस द्वारा साक्षियों की परीक्षा—पुलिस अधिकारी जो किसी मामले का अन्वेषण कर रहा है, उन सभी व्यक्तियों से जो उस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों से परिचित है या जानकारी है, मौखिक परीक्षा कर सकता है। ऐसे व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह पुलिस अधिकारी को मामले से संबंधित प्रश्नों का सही-सही उत्तर दे किंतु उन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है जो उन्हें किसी आपराधिक अभियोग या शास्ति या समपहरण में डाल दे। पुलिस अधिकारी प्रत्येक व्यक्तियों के कथन को लेखबद्ध करता है तो वह प्रत्येक में पृथक और सही-सही अभिलेख बनाएगा। (धारा-161, दंड प्रक्रिया संहिता—1973)

साधारणतया पुलिस अधिकारी साक्षियों के साक्ष्य लेने में विलंब करते हैं जिससे साक्षियों के कथन की गरिमा धूमिल पड़ जाती है, विश्वास के योग्य नहीं रह पाती है तथा अभियोजन की कहानी संदेहास्पद होने लगती है। अभियोजन की कहानी संदेहास्पद न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि पुलिस अधिकारी साक्षियों की परीक्षा यथाशीघ्र तत्परता से करे।

जाहीरा हबीबुल्ला शेख बनाम गुजरात राज्य (2004 कि.लां.ज. 2050 (सु.को.) में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि साक्षियों का कथन उनकी भाषा में लिखा जाए जिसमें वह देता है या समझता है। बयान देनेवाले व्यक्ति के कथन पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होती है।

अन्वेषण के दौरान किसी व्यक्ति का कथन अभिलिखित किया गया है तो उसके कथन पर हस्ताक्षर नहीं लिए जाएंगे। इन्हीं कारणों से अन्वेषण के दौरान किए गए साक्षियों के कथनों का उपयोग सारभूत साक्ष्य के रूप में नहीं किया जाता है। (हजारी लाल बनाम दिल्ली प्रशासन ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 873) पुलिस अधिकारी के द्वारा अन्वेषण के समय किसी व्यक्ति का कथन जो बाद में मर जाता है और जिसमें वह अपनी मृत्यु का कारण बताता है और उसकी मृत्यु से संबंधित अभियुक्त पर मामला चल रहा है तो ऐसा कथन साक्ष्य में पेश किया जा सकेगा (जी. सुंदरा उड़ीसा राज्य, 1984 क्रिमिनल ला जर्नल 1215) पुलिस के समक्ष किए गए ऐसे कथन को साक्ष्य में ग्राह्य माना जाता है।

पुलिस अधिकारी अन्वेषण के दौरान यदि किसी व्यक्ति का कथन अभिलिखित करता है तो उस व्यक्ति के उस कथन पर हस्ताक्षर नहीं किए जाएंगे। दंड प्रक्रिया सहित—1973 की धारा 162 के अनुसार यदि कोई कथन अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारी के समक्ष किया गया है तो उस कथन का प्रयोग विचारण के समय किया जा सकता है। तब जब कि उस व्यक्ति को जिसने कथन किया है, अभियोजन साक्षी रूप में बुलाया गया है।

पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण करते समय जनता के प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए तथा ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछना चाहिए जिससे कि उसकी शील लज्जा भंग होती है। अतः यदि किसी स्त्री साक्षी या अभियुक्त की परीक्षा करनी है तो उनके प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करते हुए उसकी परीक्षा पुलिस अधिकारी को करना चाहिए तथा उसके कथन को लेखबद्ध करना चाहिए। अन्वेषण के समय पुलिस अधिकारी द्वारा किसी साक्षी, व्यक्ति को किसी भी तरह का उत्प्रेरण, धमकी या वचन नहीं दिलाएगा, न ही करवाएगा, कोई व्यक्ति या साक्षी स्वतंत्र रूप से अपना कथन करना चाहे तो पुलिस उसको ऐसा करने से निवारित भी नहीं करेगी (धारा—163, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973) पुलिस अधिकारी को किसी प्रकार के कथन उपाप्त या प्राप्त करने के लिए किसी व्यक्ति से मारपीट न करे या उसे रोके नहीं। प्रायः यह देखा जाता

है कि पुलिस कथन अभिलिखित करवाने के लिए अत्यधिक यंत्रणादायक तरीके अपनाती है, मारती पीटती है, इसे रोकने के लिए राज्य को पर्याप्त उपाय अपनाने चाहिए जिससे कि जनता को विधि संगत उपबंध प्राप्त हो सके।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1972 की धारा 25 में वर्णित है कि कोई पुलिस अधिकारी या प्राधिकार वाला व्यक्ति किसी व्यक्ति को उत्प्रेरणा, धमकी या वचन न तो देगा और न करेगा तथा न दिलवाएगा और न करवाएगा जिससे वह समझे कि उसे ऐसा कथन देने से कोई लाभ होगा या वह किसी हानि से बच जाएगा।

अन्वेषण के समय या जांच प्रारंभ होने के पूर्व व्यक्तियों के कथन मजिस्ट्रेट के समक्ष भी अभिलिखित किए जा सकते हैं जिससे कि वे अपने कथनों को वाद में बदल न सके यदि वह कथन बदलते हैं तो उन्हें दंड संहिता की धारा —193 के अनुसार मिथ्या साक्ष्य देने के लिए अभियोजित किया जा सकता है। जब कोई अभियुक्त व्यक्ति अपने अपराध की स्वीकारोक्ति करता है तो उसका कथन भी मजिस्ट्रेट के समक्ष अभिलिखित करना पड़ता है, ऐसा इसलिए करना पड़ता है कि पुलिस के समक्ष की गई संस्वीकृति साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होती है जबकि मजिस्ट्रेट के समक्ष की गई संस्वीकृति साक्ष्य में ग्राह्य होती है। प्रायः पुलिस अधिकारी अभियुक्त के साथ मारपीट करके या लालच देकर स्वीकृति करने के लिए प्रेरित करते हैं। मारपीट के भय से अभियुक्त अपराध कारित करने की संस्वीकृति करने को कहता है जिससे कि वह मार-पिटाई करने से बच जाता है। ऐसे तमाम मामले सुनने को मिलते हैं जिनमें पुलिस वाले किसी अभियुक्त व्यक्ति को संस्वीकृति अभिलिखित करवाने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष लाते हैं और अभियुक्त व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष यह कहते हुए सुना जाता है कि पुलिस की मारपीट से बचने के लिए मैं संस्वीकृति करने को तैयार हुआ हूं। ऐसी परिस्थिति में मजिस्ट्रेट को चाहिए कि वह अभियुक्त व्यक्ति को जेल भेज दे और एक या दो दिन उसे अपने कथन पर विचार करने के लिए छोड़ दिया जाए जिससे कि पुलिस की ओर से यदि कोई धमकी या लालच दिया गया हो तो उसका प्रभाव कम हो जाएगा। अतः मजिस्ट्रेट को युक्तियुक्त सावधानी के साथ अभियुक्त व्यक्ति की संस्वीकृति अभिलिखित करनी चाहिए जब वह पूर्ण रूप से विश्वास कर ले कि अभियुक्त स्वतंत्रतापूर्वक संस्वीकृति बिना किसी के दबाव में या बिना लालच के कर रहा है।

अन्वेषण के समय पुलिस अधिकारी द्वारा तलाशी—जब कभी पुलिस अधिकारी को अन्वेषण करते वक्त यह विश्वास करने का आधार है कि जो किसी अपराध के अन्वेषण के लिए प्राधिकृत है उसको यह प्रतीत होता है कि थाने की सीमाओं के अंदर किसी स्थान पर अन्वेषण के प्रयोजन के लिए तत्काल तलाशी लेना आवश्यक है तो अपने आधारों को लेखबद्ध करते हुए उस स्थान की तलाशी ले सकता है या अपने अधीनस्थ को तलाशी लेने को कह सकता है। पुलिस अधिकारी तलाशी लेने के पश्चात उसकी रिपोर्ट निकटतम मजिस्ट्रेट को भेजेगा जो उसके अपराध का संज्ञान लेने के लिए समर्थ है। जिस स्थान की तलाशी पुलिस अधिकारी ने ली है उसमें स्वामी को या अधिभोगी को उसके आवेदन पर मजिस्ट्रेट के द्वारा एक प्रति निशुल्क प्रदान की जाएगी। (धारा 165 दंड प्रक्रिया संहिता—1973) अन्वेषण अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि तलाशी के लिए किसी स्थान में प्रवेश करने से पूर्व उस स्थान के भार साधक व्यक्ति से अपनी तथा साथियों की तलाशी देने के बाद ही किसी स्थान की तलाशी ले जिससे कि मामलों में संदेह की स्थिति उत्पन्न न हो। पुलिस अधिकारी को चाहिए कि तलाशी जब्ती का कार्य यथासंभव तत्काल संपन्न करे, क्योंकि विलंब से संपत्ति, माल का इधर-उधर हो जाना, नष्ट हो जाना तथा उसकी स्थिति में हेरा फेरी होने की संभावना रहती है। अतः यह जरूरी है कि तलाशी निष्पक्ष एवं विधिपूर्ण तरीके से की जानी चाहिए जिससे की संदेह की स्थिति उत्पन्न न हो।

अन्वेषण की कार्रवाई का पूर्ण होना—जब किसी व्यक्ति को किसी मामले में गिरफ्तार किया गया है और अन्वेषण की कार्रवाई विधि द्वारा निर्धारित अवधि में अर्थात 24 घंटे में पूरी नहीं हो सकती है और यह विश्वास करने का आधार है कि अभियोग या इत्तिला दृढ आधार पर आधारित है, पुलिस अधिकारी उपनिरीक्षक के नीचे की पंक्ति का नहीं है निकटतम मजिस्ट्रेट के पास ले जाएगा और उसके आदेश पर 24 घंटे से अधिक समय के लिए अन्वेषण के कार्य के लिए निरुद्ध करेगा जितने दिनों तक निरुद्ध करने का मजिस्ट्रेट आदेश दे।

सामान्यतया मजिस्ट्रेट मामले की गंभीरता को देखते हुए निरूद्ध करने की अवधि बढा देते हैं। अन्वेषण के समय ऐसे निरुद्ध व्यक्ति के, प्रति पुलिस अधिकारी का दृष्टिकोण कुछ अच्छा नहीं रहता है। पुलिस अपनी अभिरक्षा में निरुद्ध व्यक्ति के प्रति तमाम तरह से दुर्व्यवहार करती है यातना कारित करती है। इसमें साथ-साथ कई मामलों में धन उगाही की कोशिश करने से भी हिचकती नहीं है। अतः पुलिस को अन्वेषण की कार्रवाई उचित समय में पूर्ण करनी चाहिए। सामान्यतया संज्ञेय मामले में अन्वेषण 90 दिनों में तथा असंज्ञेय मामले में 60 दिन में पूर्ण हो जानी चाहिए लेकिन पुलिस को अन्वेषण विधि सम्मत सीमा में पूर्ण हो इसलिए सुधार करना होगा। पुलिस अन्वेषण टीम अलग से गठित करनी होगी जो केवल अन्वेषण का ही कार्य करेगी। विधि व्यवस्था बनाए रखना तथा व्यक्तियों की सुरक्षा का दायित्व उसके ऊपर नहीं होना चाहिए। पुलिस अधिकारी को जितनी जल्दी हो अन्वेषण का कार्य पूर्ण करना चाहिए जिससे कि अन्वेषण में संदेह उत्पन्न न हो तथा अभियुक्त को तय समय सीमा में अभियोजन के लिए प्रस्तुत किया जा सके।

जब पुलिस अधिकारी को अन्वेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि ऐसा कोई पर्याप्त साक्ष्य या संदेह का उचित आधार नहीं है जिससे अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के पास भेजा जा सके तो पुलिस अधिकारी ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को जो अभिरक्षा में है प्रतिभुओं सहित या रहित जैसा अधिकारी निर्दिष्ट करे बंधपत्र निष्पादित करने पर छोड़ देगा। इस शर्त के साथ कि जब अपेक्षा की जाएगी वह हाजिर होगा (धारा—169, दंड प्रक्रिया संहिता 1973) जब पुलिस अधिकारी को अन्वेषण करते समय यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त के अभियोजन के लिए पर्याप्त या उचित आधार है तो अभियुक्त का विचारण करने या विचारणार्थ सुपुर्द करने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट के पास अभियुक्त को अभिरक्षा में भेजेगा। यदि अपराध जमानतीय है और अभियुक्त जमानत देने को तैयार है तथा प्रतिभूति देने में समर्थ है तो उसे ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष नियत दिन को हाजिर होने के लिए प्रतिभूति लेकर छोड़ दिया जाएगा। (धारा 172, दंड प्रक्रिया संहिता 1973)

पुलिस द्वारा अन्वेषण की कार्रवाई अनावश्यक विलंब के बिना पूरी किए जाने की अपेक्षा की जाती है। यदि अन्वेषण की कार्रवाई में विलंब होता है तो इससे अभियुक्त को बच निकलने की संभावना प्रबल हो जाती है। अन्वेषण स्वच्छ एवं निष्पक्ष तरीके से किया जाना आवश्यक है। भय, दबाव, विवशता हस्तक्षेप एवं प्रलोभन से किया गया अन्वेषण निष्पक्ष नहीं हो सकता है। स्वच्छ एवं निष्पक्ष होने के लिए अन्वेषण इससे परे किया जाना आवश्यक है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तमाम तरह से दबाव समूह कार्य कर रहे है। जैसे अन्वेषण में राजनीतिक हस्तक्षेप एवं दबाव, भ्रष्टाचार, निजी स्वार्थ परायणता तरह-तरह के प्रलोभन अनैतिकता तथा पक्षपात, भाई-भतीजावाद, उचित संरक्षण का प्राप्त न होना, भयभीत होना, वरिष्ठ अधिकारियों का भय आदि कारण ऐसे हैं जिनसे अन्वेषण पर प्रभाव पड़ता है और अन्वेषण अधिकारी स्वतंत्र तथा निष्पक्ष होकर कार्य नहीं कर पाता है। ऐसा सुना जाता है कि आजकल अन्वेषण का संचालन और नियंत्रण की शक्तियां पुलिस में निहित न होकर राजनैतिक लोगों के पास सुरक्षित है। घटना से लेकर अन्वेषण तक की कार्रवाइयों में राजनैतिक लोग

निर्देश प्रदान करते रहते हैं। जिससे अन्वेषण अधिकारी बाध्य होकर अन्वेषण का कार्य करता है। अतः निष्पक्ष एवं स्वतंत्र अन्वेषण के लिए इस बात की आवश्यकता है कि अन्वेषण को राजनैतिक दबाव एवं हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद आदि से मुक्त रखा जाए और एक ऐसे अन्वेषण अभिकरण की स्थापना की जाए जिस पर उपरोक्त का कोई भी असर न पड़े जिससे कि अन्वेषण स्वतंत्र एवं निष्पक्ष तरीके से हो सके।

अन्वेषण की कार्रवाई पूर्ण हो जाने के पश्चात पुलिस अधिकारी मामले की अंतिम रिपोर्ट धारा-173 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को भेजता है, जिससे अंतिम रिपोर्ट मामले का संज्ञान मजिस्ट्रेट करता है। पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट के साथ मामले से संबंधित सभी आवश्यक दस्तावेज तथा पक्षकारों के नाम इत्तिला का स्वरूप साक्षियों के नाम, अभियुक्त गिरफ्तार किया गया या नहीं इत्यादि मजिस्ट्रेट को भेजे जाते हैं।

धारा 173 (8) के तहत यदि मजिस्ट्रेट को पुलिस की अंतिम रिपोर्ट भेज दी गई है और पुलिस अधिकारी को यदि कोई अतिरिक्त मौखिक दस्तावेजी साक्ष्य मिले, वहां ऐसे अतिरिक्त रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को विहित प्रारूप में भेजा जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने किशनलाल बनाम धमेंद्र बाफना (2009) 7 एस.सी.सी. 685) के मामले में विनिश्चित किया कि धारा—173 (8) के अंतर्गत पुनः अन्वेषण निम्नलिखित में निर्देशित किया जा सकता है।

1. यदि मामले में नए तथ्य प्रकाश में आए हों,

2. यदि वरिष्ठ न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मामले में किया गया अन्वेषण कलुषित या अनुचित है।

3. यदि वरिष्ठ न्यायालय यह अनुभव करे कि न्यायिक दृष्टि से पुनः अन्वेषण कराया जाना न्यायोचित होगा।

जाहिरा हबीबुल्ला एस. शेख बनाम गुजरात राज्य (2004) 4 एस.सी.सी. 158) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इस मामले में पुनः विचारण के आदेश दिए गए है इसलिए अन्वेषण अभिकरण से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (8) के अनुसार कार्य करे और प्रकरण में सजगता अनिवार्यता और लगन से पुनः अन्वेषण संपादित करवाए। धारा 173 (8) के अनुसार अन्वेषण की अंतिम रिपोर्ट भेज दी जाने के बाद भी यदि न्यायालय आवश्यक समझे तो पुनः अन्वेषण किए जाने हेतु आदेश दे सकता है तथा ऐसे पुनः अन्वेषण की रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेजी जाना आदेशित कर सकता है।

राज्य का प्रमुख कर्तव्य है कि व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना उन्हें संरक्षण प्रदान करना अपराधों की रोकथाम कर एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। अपराधों की रोकथाम एवं व्यक्तियों के संरक्षण करने के लिए पुलिस को दायित्व सौंपा गया है। पुलिस अपराधों की रोकथाम करने के लिए व्यक्ति को गिरफ्तार करती है तथा व्यक्ति को अभियोजन के लिए प्रस्तुत करती है। इन सभी प्रक्रियाओं में अन्वेषण करना पड़ता है। अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि अपने इलाके की जनता के अधिक से अधिक संपर्क में आए, उनके साथ मृदु व्यवहार कर उनका मन जीतने का प्रयास करे, शालीनता से पेश आए जिससे कि अन्वेषण के समय उसे सहयोग मिल सके। पुलिस की अन्वेषणात्मक शक्ति वृहद है। अपनी इस शक्ति का पुलिस अधिकारी दुरुपयोग भी करते है जिससे जनता का पुलिस के प्रति विश्वास कम हो जाता है। पुलिस को जनता के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने के लिए अपराध अन्वेषण ईमानदारी, कर्तव्य परायणता, निष्पक्षता के साथ करना चाहिए तथा जनता के प्रति मानवीय व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। अन्वेषण के समय पुलिस को किसी भी व्यक्ति यथा राजनैतिक व्यक्ति वरिष्ठ अधिकारी के दबाव में नहीं आना चाहिए उसे सिर्फ यही ध्यान में रखना चाहिए कि वह जनता की सेवा करने के लिए है और सभी जनता

उसके लिए समान है। अन्वेषण कर्ता को किसी भी प्रकार की पूर्वधारणा से प्रेरित नहीं होना चाहिए।

पुलिस के अपराध का अन्वेषण मानवीय संवेदना से युक्त होकर करना चाहिए, जो कि उससे एक मित्र और सहयोगी के रूप में होने की अपेक्षा करता है न कि तानाशाही व्यवहार के रूप में। पुलिस को अपनी अन्वेषणात्मक शक्ति का प्रयोग जनता की सुरक्षा, मान-सम्मान एवं अपराधियों को दंड दिलवाने को ध्यान में रखकर करना चाहिए जिससे कि जनता का विश्वास प्राप्त होता रहे। जनता की पुलिस के प्रति जो राय है उसे पुलिस को बदलना होगा, जनता का विश्वास प्राप्त करने के लिए पुलिस का व्यवहार मानवीय होना चाहिए तथा अन्वेषण की बारीकियों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए जिससे कि सही और निष्पक्ष अन्वेषण हो सके। पुलिस को यह नहीं भूलना चाहिए कि वह केवल अन्वेषण करने के लिए है, दंड देने के लिए नहीं क्योंकि दंड देने का कार्य न्यायालय का है। उसका कार्य केवल अन्वेषण कर सत्य की खोज करना है कि किसी अभियुक्त ने अपराध कारित किया या अपराध में संलिप्त रहा है। अपराध का अन्वेषण कर अभियोजन के लिए अभियुक्त को प्रस्तुत करना, साक्ष्य एकत्रित करना, साक्षियों की परीक्षा करना, अपराध से संबंधित या शामिल किए गए हथियार, उपकरण एवं सामान को जब्त करना आदि कार्य पुलिस को सावधानीपूर्वक तथा ईमानदारी के साथ करना चाहिए, किसी राजनैतिक दबाव या उत्प्रेरणा से प्रेरित होकर अन्वेषण का कार्य नहीं करना चाहिए।

संदर्भ सूची :—

1. रमेश प्रसाद दुबे, विकासशील समाज और पुलिस, सर्विसेज पब्लिशिंग हाउस, भोपाल, 1978।

2. महावीर प्रसाद, दंड प्रक्रिया संहिता, विधि साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006।

3. ना. वि परांजपे, अपराध शास्त्र एवं दंड प्रशासन, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, 2003।

4. ना.वि. परांजपे, दंड प्रकिया संहिता, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2013।

5. डा. जे. एन. पांडेय, भारत का संविधान, सेंट्रल ला एजेंसी, इलाहाबाद 2012।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिला अपराध एवं पुलिस की भूमिका

डा. उपासना शर्मा
प्रवक्ता, अर्थशास्त्र
राजकीय स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय
द्वाराहाट (अल्मोड़ा), उत्तराखंड-263653

उदारीकरण, विश्वव्यापीकरण एवं बाजारीकरण के आधुनिक युग में व्याप्त समस्याओं में से यदि महिलाओं के प्रति अपराध को ज्वलंत समस्या कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। यह एक ऐसी स्थिति है जो न केवल नैतिक अवधारणाओं की धज्जियां उड़ाती है, बल्कि अनैतिकता के सभी बांध तोड़ देने वाली घटना है। यह प्रत्येक सभ्य समझे जाने वाले समाज में पायी जाती है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ यह समस्या तीव्र एवं वीभत्स होती जा रही है।

महिलाओं के प्रति अपराध कोई नई अवधारणा नहीं है। प्राचीन समय से ही महिलाओं के प्रति अपराध होते रहे हैं, मात्र उनका स्वरूप बदलता रहा है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक महिलाओं की स्थिति विवादास्पद रही है। समाज चाहे प्राचीन हो या आधुनिक सभी सामाजिक व्यवस्थाओं में पुरुष प्रधान समाज की स्थापना यह प्रदर्शित करती है कि महिलाओं को जो सम्मान या उपलब्धि समाज में मिलनी चाहिए थी, अभी तक नहीं मिल सकी है।

महिला अपराध का सार्वभौमिक पहलू

महिलाओं के प्रति किए जा रहे अपराध की समस्या राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभ्य राष्ट्रों के बीच बहस का मुद्दा बनी हुई है। अपराध और हिंसा की संस्कृति सिर्फ पारंपरिक समाजों तक ही सीमित नहीं है बल्कि सुशासित देश भी इससे ग्रस्त है। आबादी की दृष्टि से भारत की तुलना में सिंगापुर में दुष्कर्म की दर अधिक है लेकिन वहां ऐसी घटनाओं पर भारत की तुलना में जनता का ध्यान कम जाता है। स्वीडन में दुष्कर्म की दर सर्वाधिक है। वहां प्रति एक लाख व्यक्तियों पर लगभग 63 मामले दर्ज किए जाते हैं। लेकिन यूरोप में मुकदमों का तुरंत निपटारा कर सजा दी जाती है। इस संदर्भ में भारत की स्थिति सोचनीय है।

आज समाज में महिला अपराध इतने व्याप्त हैं कि घर से बाहर ही नहीं, घरों में भी महिलाओं को हिंसा का शिकार होना पड़ता है। कई मामले तो सामाजिक लोकलाज एवं इज्जत के कारण उजागर ही नहीं हो पाते। जिसका कारण अशिक्षा, उदासीन व्यवहार, भावनात्मक स्तर का गिरना आदि है। वर्तमान समय में दहेज हत्या, हिंसा, दुष्कर्म जैसे मामले प्रमुख हैं। इनमें सबसे ज्यादा मामले दुष्कर्म के हैं। महिलाओं का यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ संबंधित अपराध यौन अपराध की श्रेणी में आते हैं। दुष्कर्म, अपहरण, छेड़छाड़, परिवार में प्रताड़ना समेत अन्य अपराधों के मामले में महिलाओं पर खतरे बढ़ते जा रहे हैं। जहां की पुलिस जितनी सुसज्जित है वहां उतने ही बेखौफ अपराधी हैं। जिसके कारण सामाजिक ताना-बाना बिगड़ रहा है।

भारत में महिला अपराध

भारत में अपराध के आंकड़ों की बात करें तो सभी प्रकार के अपराध निरंतर बढ़ रहे हैं परंतु महिलाओं के विरुद्ध बढ़ते अपराधों की संख्या दर्शाती है कि महिलाओं की स्थिति काफी सोचनीय है। वे न केवल घर के बाहर असुरक्षित हैं, बल्कि घर के अंदर और ज्यादा असुरक्षित है। बाहर काम करने के कारण उनका दायरा तो बढ़ा है परंतु साथ ही साथ अपराधियों का दायरा भी बढ़ा है।

महिलाओं का उत्पीड़न, अपमान, शोषण, दमन, तिरस्कार एवं यंत्रणा बहुत पुरानी है। यद्यपि सामाजिक विधान के परिप्रेक्ष्य में भारतीय महिलाएं अन्य देशों की महिलाओं से कहीं आगे निकली हुई हैं परंतु महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की प्रक्रिया इतनी मंद गति, अव्यवस्थित एवं असंगत रही है कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से वे पुरुषों से काफी पीछे हैं। क्योंकि न केवल कार्यक्षेत्र में उनके साथ भेदभाव किया जाता है, बल्कि उनके साथ दुर्व्यवहार के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न भी किए जाते हैं जिनमें वे विभिन्न प्रकार के हिंसात्मक उत्पीड़न, यौन उत्पीड़न, दुर्व्यवहार, बलात्कार, हत्या, अनैतिक व्यापार, भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न, छेड़छाड़, अपहरण इत्यादि हैं। पुरुष समाज अपने को महिलाओं से अपेक्षाकृत ज्यादा श्रेष्ठ व ताकतवर मानते हैं जिसके कारण महिलाओं के प्रति की गई हिंसा को हिंसा या अपराध की दृष्टि से नहीं देखा जाता है तथा दूसरी तरफ स्वयं महिलाए अपने धार्मिक एवं सामाजिक मूल्यों के कारण अपने ऊपर की गई हिंसा से इंकार कर देती हैं। जिसकी वजह से महिलाओं के विरूद्ध किए गए अपराधों की वास्तविक दर को बताना मुश्किल होता है। परंतु हाल ही में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार महिलाओं के प्रति अपराध को एक वाद-विवाद की जगह एक जन समस्या माना गया है। जिसके कारण देश की तरक्की में बाधा उत्पन्न हो रही है, क्योंकि कोई देश तभी विकसित माना जा सकता है जबकि वहां पर समानता संबंधी अधिकार पूर्ण रूप से दोनों वर्ग अर्थात पुरुष व स्त्री दोनों को प्राप्त हों।

समाज में महिलाओं के प्रति सभी तरह के संज्ञेय अपराधों में पिछले साठ वर्ष के दौरान बेतहाशा वृद्धि हुई है। मगर बढ़ोत्तरी के मामले में दुष्कर्म शीर्ष पर हैं। पिछले 40 वर्षों के दौरान दुष्कर्म के मामलों में लगभग 900 फीसदी वृद्धि हुई है। प्रमुख रूप से कुल संज्ञेय अपराधों को वर्ष 1953-2011 के बीच हुई वृद्धि को सारणी 1 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

सारणी-1

प्रमुख संज्ञेय अपराध

अपराध	वर्ष 1953	वर्ष 2011	वृद्धि (प्रतिशत में)
कुल संज्ञेय अपराध	6 लाख	23 लाख	286
हत्या	9802	34305	250
दुष्कर्म	2487	24206	873
अपहरण	5261	44664	749
लूट	8407	24700	194
दंगे	20529	68500	234

नोट—दुष्कर्म के आंकडे एन सी आर बी ने वर्ष 1971 से रखने शुरू किए (आइपीसी के तहत)

सारणी 1 के विश्लेषण से ज्ञात है कि सर्वाधिक प्रतिशत वृद्धि दुष्कर्म के मामलों में हुई है। वास्तव में देखा जाए तो दुष्कर्म का दुष्प्रभाव महिलाओं के सोचने, समझने, या जानने को कुछ नहीं छोड़ता। दुष्कर्म या बलात्कार महिलाओं के प्रति किया गया एक ऐसा अपराध है जिसके दंश को वह जीवनभर झेलती हैं। एक ओर आत्मग्लानि तथा दूसरी ओर सामाजिक प्रतिष्ठा का ह्रास उन्हें पंगु बना देता है।

भारत में वर्ष 2009 के अंतर्गत कुल 38711 मामले दर्ज किए गए जबकि वर्ष 2010 में 40613 मामले प्रकाश में आए। अर्थात 2009 के मुकाबले 2010 में अपराधों में वृद्धि हुई है। इन अपराधों में शारीरिक छेड़छाड़ संबंधी अपराध सिर्फ निम्न वर्ग तक सीमित नहीं है। बल्कि इसमें सभी वर्ग की महिलाएं इसका शिकार होती हैं। कार्यालय में किसी भी अधीनस्थ महिला को भी इस तरह के उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। महिलाओं को व्यावसायिक परिसरों, स्कूलों, कालिजों, उद्योग धंधों और कार्यालयों तक में भी शारीरिक छेड़छाड़ जैसे उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है।

वर्ष 2010-11 के दौरान पूरे देश में महिलाओं के विरुद्ध जितने अपराध हुए, उनमें 13 प्रतिशत अकेले दिल्ली में थे। उसके बाद बेंगलूर, हैदराबाद और विजयवाड़ा का नंबर है। इस दौरान देश के 53 शहरों

में अकेले दिल्ली में दुष्कर्म की 17.6 प्रतिशत और अपराध की 32 प्रतिशत घटनाएं हुईं।

देश में महज एक साल के अंतराल में दुष्कर्म के मामले में 9 प्रतिशत, अपहरण में 19 प्रतिशत, परिवार के भीतर ही उत्पीड़न के मामले में लगभग साढ़ 5 प्रतिशत, छेड़छाड़ में 6 प्रतिशत और लड़कियों की तस्करी के मामले में 122 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाए तो इससे समझा जा सकता है कि देश किस रास्ते पर है।

समाज में महिलाओं के प्रति भेदभाव को उनकी आयु के हर स्तर पर देखा जा सकता है। जैसे खान-पान, रहन-सहन, शिक्षा आदि से लेकर जीवन की अहम जरूरतों में लड़कों को लड़कियों पर वरीयता प्राप्त है। समाज में लैंगिक भेदभाव के आधार पर असमानतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। महिलाओं के साथ उत्पीड़ित व्यवहार, ह्रासमान व्यवहार एवं गौण दर्जे का व्यवहार किया जाता है। जबकि अध्ययनों से स्पष्ट है कि महिलाएं किसी भी प्रकार पुरुषों से पीछे नहीं हैं। समाज में व्याप्त लिंग के आधार पर विभिन्नता को समाप्त करने एवं विभिन्नता को सामने लाने में अध्ययनों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये अध्ययन केवल ज्ञान बढ़ाने में ही सहायक नहीं हैं बल्कि इनके द्वारा महिलाओं से संबंधित समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

महिला अपराध को उजागर करने वाले विभिन्न कारक

वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति हिंसा एवं अत्याचार में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। बढ़ती घटनाओं को मीडियाकर्मी एवं सामाजिक सरोकार रखने वालों की वजह से बल मिलता है। अपने वोट बैंक की बढोत्तरी के लिए कई मामले तो थाने में रिपोर्ट दर्ज तक नहीं होने दी जाती। भ्रष्ट व्यवस्था में अपराधी जोड़-तोड़ लगाकर अपने को बेदाग घोषित करने में सफल हो जाते हैं जिस कारण दोबारा दुष्कर्म करने में अपराधी नहीं हिचकिचाता है। कुछ जिम्मेदार नेता एवं जनप्रतिनिधि ऐसी घटनाओं के लिए महिलाओं को दोषी मानते हैं। ये वह लोग हैं जो पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के पक्षधर हैं। जो महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर नहीं देखना चाहते हैं।

समाज में होने वाली लैंगिक हिंसा अथवा महिला अपराध से संबंधित अनेक अध्ययन समय-समय पर होते रहे हैं तथा विभिन्न आयोग एवं संगठनों ने भी इससे संबंधित अपने आंकड़े प्रस्तुत किए हैं।

नोबेल पुरस्कार समिति ने एलेन जानसन सरलीफ लीमेह जीबोई तथा तवाकुल करमान को शांति के पुरस्कार से नवाजते हुए उद्घोषणा की कि—"महिलाओं की सुरक्षा और शांति की स्थापना में महिलाओं की पूर्ण भागीदारी के अधिकार हेतु उनके अहिंसक संघर्ष के लिए सम्मानित कर रही है।"

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि सभी तरह के संज्ञेय अपराधों में पिछले साठ साल के दौरान बेतहाशा वृद्धि हुई है। सख्त कानून यहां तक कि मौत की सजा के प्रावधान वाले अपराधों में भी दो से तीन गुनी वृद्धि दर्ज की जा चुकी है। बढ़ोत्तरी के मामले में दुष्कर्म शीर्ष पर है। पिछले 40 वर्ष के दौरान इसके मामलों में करीब 900 फीसदी वृद्धि हुई है।

कई अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि जब लिंगानुपात अधिक होता है तो दुष्कर्म जैसे मामले में अपेक्षाकृत कमी दिखती है। 1991 में प्रसिद्ध अमेरिकी जनरल 'क्रिमिनोलाजी' में प्रकाशित आर.एम.ओ. ब्रायन के एक शोध 'सेक्स रेशियो एंड रेप्स रेट्स : अ पावर कन्ट्रोल थ्योरी' में इसे स्पष्ट किया गया है। इसके अनुसार यद्यपि उच्च लिंगानुपात पुरुषों की महिलाओं पर पितृसत्तात्मक प्रभुसत्ता (आयडिक पावर) को कमजोर करता है। ऐसी स्थिति में पुरुष महिलाओं पर नियंत्रण करने के लिए अपने स्ट्रक्चरल पावर (बलात) का प्रयोग करता है। इस शोध में अपनी संकल्पना के समर्थन में ब्रायन ने अमेरिका के 1962, 67, 72, 77, 82 और 1987 के आंकड़ों का इस्तेमाल किया था।

वर्तमान समय में समाज में दुष्कर्म की बढ़ती वारदातों से हर कोई चिंतित है। यौन हिंसा से होने वाले अपराधों का निदान उचित यौन शिक्षा से ही निकाला जा सकता है। यह बात विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने अब कहनी शुरू कर दी है। भारत में 1600 साल पहले कामसूत्र के लेखक ऋषि वात्स्यायन यह बात कह गए हैं। वात्स्यायन के अनुसार यह शिक्षा प्राग यौवने अर्थात यौवन काल शुरू होने से ठीक पहले यानी किशोरावस्था में दी जानी चाहिए।

डा. रंजना कुमारी का मानना है कि महिलाओं के प्रति अपराधों में वृद्धि पितृसत्तात्मक मानसिकता के प्रकटीकरण का ही एक रूप है। लिंग चयनात्मक, गर्भपात, दहेज, आनर किलिंग, बलात्कार, घरेलू हिंसा और मानव तस्करी जैसे कई रूपों में यह हिंसा महिलाओं के प्रति देखने को मिलती है। बढ़ते जेंडर आधारित अपराधों की पहचान करने की जरूरत है, भले ही उनमें हिंसा का सहारा नहीं लिया गया हो। वे सरकारी नीतियों, विधानों और सेवाओं में सुधार के जरिए इसके खिलाफ सख्त कदम उठा सकते हैं। लिंग आधारित हिंसा और लैंगिक असंतुलन में पितृसत्तात्मक सोच के खिलाफ कदम उठाने की जरूरत है।

महिलाओं के प्रति हिंसा से सुरक्षा के लिए तमाम कानूनों और महिलाओं में बढ़ती साक्षरता के कारण वह अपने ऊपर होने वाले उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठा रही हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग में महिलाओं के खिलाफ उत्पीड़न के घरेलू हिंसा संबंधी 2944 मामले, कार्य स्थल पर उत्पीड़न संबंधी 521, दहेज के कारण मौत 465, बलात्कार संबंधी 544, दहेज उत्पीड़न 446, छेड़छाड़ संबंधी 336 मामले, बलात्कार के प्रयास संबंधी 198 मामले प्रकाश में आए हैं। इस संबंध में 505 मामले पुलिस उत्पीड़न के हैं तथा 3239 मामलों पर पुलिस का रवैया उदासीन रहा।

अहमदाबाद शहर की अतिरिक्त पुलिस कमिश्नर डा. मीरा रामनिवास एक कवयित्री एवं लेखिका हैं। इस संदर्भ में उनका कहना है कि पुलिस स्टेशनों को आनलाइन करने से स्त्रियों को बड़ी राहत मिलेगी, क्योंकि हिंसा के बाद उन्हें अपने को संभालना मुश्किल होता है। वे भावनात्मक रूप से बेहाल होती हैं। ऐसे में आनलाइन रिपोर्ट से उन्हें बड़ी सुविधा होगी।

महिला सशक्तिकरण की बात आज संपूर्ण विश्व में हो रही है। महिलाओं के हित में कानून भी बनते रहे हैं। दहेज, हत्या, बलात्कार, घरेलू हिंसा कानून, बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या सभी महिलाओं के लिए हैं। दहेज हत्या और बलात्कार के अपराध गैर जमानती हैं। बलात्कार को हत्या के समकक्ष माना गया है। मगर जब विश्लेषण करते हैं तो पता चलता है कि आज भी सत्ता पुरुषों के हाथ में है। सामान्यतः किसी भी घटना पर विक्षुब्ध होकर जनता विरोध प्रदर्शन करती है तो उन्हें समझाने के लिए तुरंत कार्रवाई का आश्वासन तो दे दिया जाता है परंतु शांति होने पर पुनः घटना को दरकिनार कर दिया जाता है। न्याय की मांग करनेवालों का मुंह बंद करने के लिए शासन-प्रशासन यही नीतियां अपनाता है। जब तक दोषी दंडित नहीं होते, अपराध बढ़ेंगे और जब-जब ऐसी घटनाएं होंगी और व्यवस्था महिलाओं की सुरक्षा की गारंटी नहीं लेगी, लोगों का विश्वास टूटेगा। किसी भी मामले को यह कहकर टालना कि 'हाई प्रोफाइल नहीं है अतः सी.बी.आई. जांच नहीं हो सकती' कहना अनुचित है। वास्तव में इन बातों से आम लोगों की सुरक्षा पर सरकार व प्रशासन का नजरिया स्पष्ट होता है।

अनेक कानून नियमों के बनने के बाद भी इस तरह की घटनाओं को रोक पाने में सरकार पूरी तरह विफल हो रही है, अपराधों को रोकने में न तो सरकार सजग है और न ही पुलिस प्रशासन है।

आज समाज में वास्तविक चुनौती हिंसा की संस्कृति के उन्मूलन की है, जिसके लिए सुविचारित कड़े कदम, पुलिस सुधार और महिलाओं के प्रति सामाजिक मानसिकता में बदलाव आवश्यक है। इस बदलाव से ही

समाज में अपराध और हिंसा की संस्कृति का उन्मूलन और महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों के खिलाफ वांछित नतीजे प्राप्त किए जा सकते हैं।

महिला अपराध एवं पुलिस

यह भी सच है कि हम पुलिस को कितना ही गैर जिम्मेदार मानें परंतु पहले की तुलना में अब महिलाओं पर हिंसा और दुष्कर्म के मामले अपेक्षाकृत आसानी से दर्ज किए जाते हैं। भले ही कुछ सीमा तक इसका श्रेय महिला हितैषी संगठन एवं विभिन्न कानून या मीडिया की सक्रिय भूमिका हो परंतु हर मामले में तुरंत रिपोर्ट लिखी जाती है।

पुलिस के आधुनिकीकरण के तहत आनलाइन एफ.आई.आर. की पहल पुलिस विभाग एवं देश की महिलाओं के लिए एक अच्छी सुविधा है। इससे महिलाओं को भी मामला दर्ज कराने में सुविधा होगी। अपराधियों की जानकारी देने के लिए क्राइम एंड क्रिमिनल ट्रैकिंग नेटवर्क एंड सिस्टम इस दिशा में काम कर रहा है। तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब व दिल्ली के अतिरिक्त अन्य पुलिस स्टेशनों को भी आनलाइन कनेक्ट किया जा रहा है। इस सुविधा के तहत उच्च अधिकारी व दूसरे पुलिस स्टेशन के कर्मचारी किसी भी समय कोई भी डाटा देख सकते हैं। इन पुलिस स्टेशनों को होम डिपार्टमेंटस इंटरनल टेक्नोलॉजी प्रोग्राम के अंतर्गत जोड़ा गया है। इसके तहत किसी भी समय अपराध की खबर की रिपोर्ट आनलाइन की जा सकती है।

आज कमी देश के कानून में नहीं, बल्कि प्रभावी क्रियान्वयन में है। महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा एवं दुष्कर्म जैसे अपराध तब तक नहीं रोके जा सकते जब तक अपराधियों को कड़ा दंड नहीं दिया जाता। आवश्यक है कि दुष्कर्म जैसे संगीन अपराध में शामिल लोगों के खिलाफ त्वरित सुनवाई हो और उन्हें कड़ा दंड दिया जाए। महज कानून बनाने एवं मीडिया में हो-हल्ला मचाने से कोई समाधान नहीं निकलेगा।

समाज में महिलाओं के प्रति अपराधों को समाप्त करने के सुझाव

पिछले कुछ दशकों में महिलाओं के प्रति अपराध एवं हिंसा की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है। इन्हीं परिस्थितियों ने समाज वैज्ञानिकों, नीति निर्धारकों एवं समाज सुधारकों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। यह सही है कि नारी को सुरक्षा व सुख प्रदान करने के बदले पुरुषों ने नारी को तिरस्कृत किया है, महिलाओं की उपेक्षा की है, उनका अपमान एवं शोषण किया है, यहां तक कि उसके साथ अमानवीय हिंसात्मक व्यवहार भी किया है।

विश्वव्यापीकरण, वैश्वीकरण एवं बाजारीकरण के युग में महिलाओं की सुरक्षा हेतु ऐसे कदम उठाए जाने की आवश्यकता है जिससे महिलाओं में समाज के प्रति कम होते विश्वास को कायम रखा जा सके क्योंकि समाज में महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा से जहां समाज का पतन होता जा रहा है वहीं दूसरी ओर महिलाएं भी अनेक नियम, कानूनों के होते हुए भी अपने को ठगा सा महसूस कर रही हैं। अतः वर्तमान संदर्भ में महिलाओं के प्रति हिंसात्मक अपराधों को रोकने के लिए नीति एवं नियम में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है। इससे जहां महिलाओं में विश्वास पैदा होगा, वहीं कुछ हद तक कन्या भ्रूण हत्या को भी रोका जा सकेगा।

सरकार, गैर सरकारी संगठन एवं पुलिस की सजगता, निष्ठा एवं कर्तव्यपरायणता के कारण अपराधों में हो रही वृद्धि को रोका जा सकता है। महिलाओं को भी विशेष शिक्षण एवं प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, एवं जागरूक बनाना चाहिए।

समाज में एक वर्ग ऐसा भी है जो अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित है जिनके पास कड़ा दंड जानने के लिए दैनिक अखबार एवं टेलीविज़न नहीं है। कुछ अपराधी ऐसे भी हैं जो इन सुविधाओं के अभाव में हैं। अतः

उनको कानून एवं नियमों के द्वारा दंड दिए जाने का अन्य कोई साधन अपनाया जाना चाहिए।

ऐसे में केवल सख्त कानून से नहीं, समाज में महिलाओं के साथ होनेवाले भेदभाव को समाप्त किए बिना, उनके प्रति लोगों में संस्कार और सम्मान का बीज रोपे बिना महिलाओं के प्रति हिंसा को समाप्त कर पाना असंभव-सा दिखता है। आज समाज में महिला पुरुष के बीच तादात्म्य स्थापित कर एक आदर्श समाज की परिकल्पना को फलीभूत करना हम सबके लिए बड़ा मुद्दा है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका

हिंसा के कुछ मामलों में पुलिस की भूमिका को भी अधिक सकारात्मक बनाए जाने की आवश्यकता है। पुलिस का कार्य सिर्फ चोरों को पकड़कर उन्हें सजा दिलवाना नहीं है बल्कि वह समाज के ऐसे सूत्रधार हैं जो समाज में हो रहे शोषणों के प्रति लोगों में जागरूकता लाकर, अधिकारों के प्रति सजग करके, महिलाओं के लिए बनाए गए कानूनों को महिलाओं को बताकर, उनके प्रति लड़ने के लिए तैयार कर सकते हैं। गैर सरकारी संगठनों की सहायता, कामकाजी एवं घरेलू महिलाओं को भी इन अपराधों के प्रति जागरूक करके, अपराधों को दर्ज करके, सामाजिक स्तर पर जागरूकता लाना एवं महिलाओं को सशक्त बनाना है। पुलिस का विशेष प्रयास समाज में जागरूकता फैलाकर महिलाओं को सशक्त बना सकता है और उन्हें शोषण से लड़ने के लिए भी प्रेरित कर सकता है तथा पुलिस उन्हें नारी होने पर शर्मिंदा नहीं गर्व महसूस करा सकती है।

अतः महिलाओं के विरुद्ध अपराधों को कम करने में पुलिस की बहुत बड़ी भूमिका हो सकती है क्योंकि पुलिस एवं सरकार द्वारा महिलाओं की सुरक्षा में सशक्तियों में विशेष प्रयास किए जा रहे हैं ताकि महिलाएं अपने आपकों दोयम दर्जे का न समझें और अपनी सर्वोपरिता को पहचानें, क्योंकि स्त्री समाज की वह धुरी है जिससे समाज चलता है और उसका नवनिर्माण होता है। अतः महिलाओं को अपने आपको कमजोर न समझकर अपने ऊपर हिंसात्मक कार्रवाई नहीं होने देनी चाहिए बल्कि उसका निडरता के साथ सामना करना चाहिए, क्योंकि महिला सर्वशक्तिमान है, बस, उसे उसकी शक्ति याद दिलाने की आवश्यकता है। अतः इस कार्य के प्रति जागरूकता लाना पुलिस विभाग का भी कर्तव्य बन जाता है।

भारतीय पुलिस एवं भूमिका प्रतिपादन की दुविधाएं

प्रोफेसर एल.एल. श्रीवास्तव
बी. 22/159 ए1, शंकुलधारा विद्युत उपकेंद्र के सामने, शंकुलधारा, वाराणसी—221005

डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजदीप महिला महाविद्यालय, कैलहट, चुनार,
जिला—मिरजापुर (उ.प्र.)

समाज में शांति एवं कानून व्यवस्था बनाए रखने, अपराधों की रोकथाम, दैवीय आपदाओं के समय जन साधारण के साथ मिलकर रचनात्मक भूमिका प्रतिपादित करना, समाज के निर्बल वर्गों, अनुसूचित जाति, जनजातियों, अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं के उत्थान एवं कल्याण के लिए राज्य द्वारा निर्मित विविध प्रकृति के कानून को सही ढंग से लागू करने में प्रत्येक संभावित सहयोग प्रदान करना आदि ऐसे कार्य हैं जिन्हें समाज के संदर्भ में पुलिस की सकारात्मक भूमिका के रूप में मूल्यांकित किया जाता है। समाज में सामाजिक न्याय की प्राप्ति की अभिलाषा में वृद्धि, मानवाधिकार हनन के समाचारों का सकारात्मक सहयोग, अपराधों की बढ़ती दरों में अंकुश लगाने के लिए कठिन प्रयास आदि की पृष्ठभूमि में पुलिस की सक्रिय भागीदारी को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पुलिस के समक्ष समस्याओं का सृजन तो जनसामान्य के साथ पारस्परिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में होता है। जनता के विविध प्रकार की सेवा में लिप्त पुलिस को परिस्थिति विशेष में अनुशासन में रखने के लिए भी तत्पर रहना पड़ता है। अतः समाज के अंतर्गत पुलिस से विविध प्रकार की अपेक्षित भूमिकाओं की आशा की जाती है। पुलिस समाज के अंतर्गत विविध प्रतिमानों एवं मूल्यों के धरातल पर अपनी सक्षम भूमिका प्रतिपादित करने का प्रयास करता है।

संगठनात्मक पृष्ठभूमि में पुलिस के प्रकार्य

पुलिस सरकार के कार्यपालिका संबंधी विविध कार्यों को उचित ढंग से प्रतिपादित करने के लिए एक महत्वपूर्ण यंत्र के समान कार्य करता है। पुलिस का यह प्रयास रहता है कि कानून एवं व्यवस्था के प्रारूप में किसी प्रकार के दुष्प्रकार्यों का प्रभाव न पड़े। पुलिस से संबंधित स्वस्थ वैचारिकी का विकास एक दिवास्वप्न है। समाज में पुलिस का सामना अपराधियों, दुर्व्यसनी, बाल-अपराधी आदि से पड़ता रहता है। फलस्वरूप उनसे संबंधित कार्यों एवं व्यवहारों के प्रारूप का धवल होना संदेहास्पद है। पुलिस की दिनचर्या में विविध प्रकार की विकृतियों का अस्तित्व बनना एक सामान्य सी प्राक्कल्पना हो सकती है।

विकासोन्मुख देशों में परिवर्तन की विविध प्रक्रियाओं का प्रभाव जन साधारण के जीवन के विविध पक्षों पर पड़ता है। परिवर्तन के सकारात्मक प्रभाव के साथ ही साथ नकारात्मक प्रभाव को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पुलिस प्रशासन विकास को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकता है तथा परिस्थिति विशेष में दिशाबोध भी प्रदान कर सकता है। समसामयिक स्थितियों के उद्देश्यमूलक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पुलिस सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की अपेक्षा राजनीतिक जीवन के विविध उद्दीपनात्मक पक्षों को अधिक प्रभावित करने में तत्पर रहती है। उसकी इस प्रकार की भूमिका से भूमिका द्वद की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है और उसकी कर्तव्यनिष्ठा के प्रति विविध प्रकार के गंभीर एवं स्वार्थपूर्ण प्रश्न उठने लगते हैं। पुलिस की खाकी वर्दी से उसकी रचनात्मक भूमिका सहसंबंधित है। परंतु निहित स्वार्थ के फलस्वरूप

वह सार्थक परिणाम देने में असमर्थ होती है।

समाज के अंतर्गत बल के साधनों के प्रयोग पर पुलिस का एकाधिकार सर्वमान्य है और उसे साधारणतया चुनौती नहीं दी जा सकती। पुलिस का चित्रकल्प सर्वमान्य रूप से समाज के उद्देश्यमूलक नियंत्रण का है। अतः साधारणतया उसकी भूमिका के प्रति समाज में भय, उत्तेजना तथा आशंका का होना स्वाभाविक है। पुलिस के साथ समाज के प्रत्येक स्तर के लोगों का वांछित भावनात्मक संबंध नहीं बन पाता है। इसका मूल कारण है पुलिस परिस्थिति विशेष के कारण एवं विविध प्रकृति के समसामयिक दबाव के कारण अपनी प्रस्थिति के अनुरूप भूमिका प्रतिपादन नहीं कर पाती तथा कभी-कभी अपनी अपेक्षित भूमिका से विचलित भी हो जाती है। परिणाम यह होता है कि पुलिस का चित्रकल्प साफ न होकर विविध प्रकार के दागों से युक्त हो जाता है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पुलिस समाज के विविध अवयवों एवं प्रारूपों की रक्षा करती है तथा जन साधारण के जीवन की रक्षा संकट की नाजुक घड़ियों में करने के लिए तत्पर रहती है। अतः पुलिस का महत्व निर्विवाद रूप में स्वयंसिद्ध है। लक्ष्य उन्मेषित आधारों पर भूमिका का सही ढंग से प्रतिपादन न होने के कारण सामान्य जन का पुलिस के प्रति चित्रकल्प सदैव विरोधाभास के स्थिति का सृजन करता है। पुलिस की तटस्थ भूमिका सदैव विवाद का विषय रहा है जिसमें यथार्थ के तथ्यों को ढूंढ़ना एक कठिन कार्य है। इस संदर्भ में पुलिस को अपने चित्रकल्प के विविध पक्षों को तथ्यपरक बनाने का प्रयास करना चाहिए।

सामाजिक पटभूमि में पुलिस का चित्रकल्प

भारतीय सामाजिक पटभूमि में राजनैतिक आधुनिकीकरण, प्रजातांत्रिक प्रक्रिया तथा सामाजिक धर्मनिरपेक्षतावाद के माध्यम से विकास को प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है परंतु इन प्रक्रियाओं को लक्ष्य उन्मेषित बनाने में पुलिस के सक्रिय सहयोग की अपेक्षा तभी की जा सकती है जब समाज पुलिस के प्रति नवीन सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाने का सार्थक प्रयास करे। पुलिस के भूमिका उन्मेष में परिवर्तन लाने के लिए उससे संबंधित प्रशासनिक ढांचे एवं भूमिका उन्मुखता में भी परिवर्तन लाना आवश्यक है। आज नवीन सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष यह समस्या प्रबल स्वरूप धारण कर रही है कि समाज में नवीन लक्ष्यों एवं मान्यताओं हेतु पुलिस तंत्र को कैसे प्रासंगिक एवं गतिशील बनाया जाए। भय पर आधारित तथा बाहुबल से अभिप्रेरित पुलिस संगठन का अतीत में इतना दुरूपयोग हुआ है कि वह अब किसी प्रकार से कानून व्यवस्था की पुष्टि का मात्र पोषक समझा जाता है। ऐसी स्थिति में पुलिस से स्वस्थ चित्रकल्प की कैसे कल्पना की जा सकती है?

समाज के अंतर्गत क्षुब्ध, क्रुद्ध एवं हताश जनता पुलिस के समसामयिक व्यवहार के प्रति उदासीन है तथा उससे किसी लक्ष्य उन्मेषित परिणाम की अपेक्षा नहीं करती। पुलिस समाज के अंतर्गत व्याप्त विविध प्रकार के मर्मस्पर्शी कहानी का कोई हल ढूंढ़ने में अपनी क्षमता का परिचय नहीं दे पाती। कर्तव्यपरायण होने के उपरांत भी परिस्थितिजन्य विशेषताओं से युक्त नेतृत्व के अभाव में वह अपनी दक्षता का परिचय नहीं दे पाती। परिणामस्वरूप समाज के सजग प्रहरी का दावा करने वाली पुलिस से सिर्फ विवशता की ही उपलब्धि प्राप्त होती है।

समाज के विविध उप-व्यवस्थाओं में व्याप्त समस्याओं के तथ्यगत विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारतीय पुलिस में बौद्धिक जाग्रति तो है परंतु उसके व्यावहारिक उपयोग के आयामों का अभाव है। सामान्यजनों में साधारणतया ऐसी अनुभूति व्याप्त है कि पुलिस को उचित एवं अनुचित के मध्य स्पष्ट अंतर स्थापित करने में उभयसंकट की स्थिति का सामना करना पड़ता है। समसामयिक परिस्थितियों में सामान्य

व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों के प्रति सचेत हैं तथा राजनैतिक व्यवहार के विविध आयामों में अप्रासंगिक गतिविधियों के कारण उनसे किसी प्रकार की आशा नहीं करता। इस संदर्भ में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भारतीय पुलिस 'परिवर्तन' का उत्प्रेरक न बनकर क्षितिज का व्यक्ति बनना अधिक प्रासंगिक समझती है।

पुलिस की भूमिका प्रतिपादन में सुधार की अपेक्षा

पुलिस की भूमिका में सुधार की बात को दृढता के साथ अनुमोदित किया जाता है। समाज की परिवर्तित परिस्थितियों में यह अपेक्षा की जाती है कि पुलिस समाज के वांछित लक्ष्यों के अनुरूप भूमिका प्रतिपादन में परिमार्जन करे। यह कटु सत्य है कि अपराधों की खोज-बीन करना, उनको रोकने के लिए दृढ़ कदम उठाना तथा समाज में कानून व्यवस्था बनाए रखने में अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करना पुलिस का आधारभूत प्रकार्य है। पुलिस से समाज-व्यवस्था के उचित संचालन में सहयोग की अपेक्षा की जाती है, परंतु क्या कभी यह भी सोचा जाता है कि पुलिस किन विषम परिस्थितियों में वह अपनी भूमिका प्रतिपादित करता है? उससे कर्तव्य बोध के अनंतर एक निष्ठावान कर्मिक की आशा की जाती है परंतु उसकी पारिवारिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक कठिनाइयों पर उच्च पदस्थ अधिकारियों के पास सोचने का बहुमूल्य समय होती है? पुलिस के जीवन के विविध पक्षों को प्रभावित करने वाली कठिनाइयां उसे अपने कर्तव्य पथ से विचलित होने के लिए बाध्य करती हैं। ऐसी स्थिति में कर्तव्यनिष्ठा विकसित नहीं होती वरन विघटित होती है।

जन सामान्य में पुलिस के भूमिका के प्रति जो चित्रकल्प निर्मित हुआ है उसे परिमार्जित करने के लिए यह आवश्यक है कि पुलिस संगठन भूमिका प्रत्याशा एवं भूमिका प्रतिपादन में अंतर उत्पन्न करनेवाले कारकों का तथ्यगत विश्लेषण करने का प्रयास करें। जन सामान्य पुलिस को किसी प्रकार का प्रशासनिक सहयोग इसलिए नहीं देना चाहता, क्योंकि वह पुलिस थाने अथवा पुलिस अधिकारी के मायाजाल के पास जाने में हिचकिचाहट एवं परेशानी का अनुभव करता है। उसको यह आशंका रहती है कि उनकी बातों अथवा सूचना को कानूनी दाव पेंच में फंसाकर उसे परेशान किया जा सकता है। पुलिस व्यवहार की रणनीति में दुर्व्यव्यहार की भी संभावना बलवती हो सकती है। सामान्यजन का विश्वास जीतने के लिए पुलिस को अपने उदासीनता, सामंतीगुण एवं अमानवीय व्यवहार में सुधार लाने की समुचित परिकल्पना करनी चाहिए। यहां पर एक समाजशास्त्रीय प्रश्न यह उठता है कि सामाजिक सुरक्षा के सजग प्रहरी से मृदुल एवं मानवीय व्यवहार की अपेक्षा क्यों की जाती है? पुलिस विभाग उन्हें कर्तव्यनिष्ठ होने की दीक्षा तो देता है परंतु उन्हें उन वांछित सुविधाओं को प्रदान करने की पृष्ठभूमि नहीं बनाता जिसके वे हकदार हैं। परिणामस्वरूप इनकी स्वप्निल दुनिया कगार का वृक्ष बन जाती है।

पुलिस की भूमिका में सुधार की अपेक्षा तब तक नहीं की जा सकती जब तक उसके ऊपर से राजनीतिक दबाव के संकुलजाल को समाप्त न किया जाए। इस संदर्भ में कई प्रश्न स्वतः उठते हैं? पुलिस के व्यावसायिक कार्यों में जन प्रतिनिधियों की घुसपैठ क्यों होती है? ऐसा साधारणतया देखा गया है कि जो पुलिसकर्मी राजनीतिक मठाधीशों एवं सिपहसालारों की बात नहीं मानते वे निरंतर स्थानांतरण, अपमान एवं विविध प्रकार की आपदाओं के कुठाराघात से प्रताड़ित रहते हैं। पुलिस का उपयोग राजनेता करते हैं परंतु जब जवाबदेही की स्थिति आती है तो वे अपना पल्ला झाड़कर उसे आपत्ति के भंवरजाल में झोंक देते हैं। अतः पुलिस में भूमिका सुधार की अपेक्षा तब तक नहीं की जा सकती जब तक उसके ऊपर से अवांछित दबाव की रणनीति न समाप्त कर दी जाए। यह प्रक्रिया असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

'पुलिस-दल' में दक्षता और ईमानदारी लाने के लिए प्राथमिक आवश्यकता निचले संस्तरण के कर्मिकों की सेवा स्थिति में व्यापक सुधार किया जाए। पुलिस की भूमिका में सुधार तभी संभव है जब सबसे पहला ध्यान सिपाहियों पर केंद्रित किया जाए। साधरणतया सिपाहियों की संख्या उनके संगठन में अस्सी प्रतिशत होती है। समाज में उनका जनता से सीधा संपर्क होता है। समाज के ऐसे प्रहरी की मांगों एवं आवश्यकताओं पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है। पुलिस के सेवा शर्ते दयनीय हैं और उनमें सुधार की महती आवश्यकता है। प्रशासनिक संरचना के कर्णधार भी पुलिस को 'सत्ता की पुलिस' बनाए रखना चाहते हैं। जब पुलिस शासकों के हित में काम करती है तो उसे जनता के निगाह में दमन का अस्त्र बनना ही पड़ता है। अतः पुलिस को अपने प्रति बने चित्रकल्प को परिमार्जित करने का प्रयास करना चाहिए। यह तभी संभव है जब पुलिस भूमिका एवं भूमिका प्रतिपादन की दूरी को कम करते हुए जन साधारण के समक्ष अपने कर्तव्य को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास करे।

तथ्यगत विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पुलिस से संबंधित विविध प्रकार के व्यवहारगत कठिनाइयों को मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर समझने का प्रयास करना चाहिए। उनकी मांगों एवं समस्याओं को कर्तव्यनिष्ठा एवं उत्तरदायित्व के निर्वाह की वेदी पर न्योछावर नहीं करना चाहिए। अनुशासन की दीवार बाह्य एवं आंतरिक कारकों से जब प्रभावित होती है तब मर्यादा की परिधि का अतिक्रमण होना एक सामान्य प्रक्रिया बन जाती है।

लेखकों से निवेदन

यदि पुलिस विज्ञान में प्रकाशन के लिए आपके पास पुलिस, शांति-व्यवस्था, अपराध न्याय-व्यवस्था आदि पर कोई लेख है या आप लेख लिखने में सक्षम हैं तथा रुचि रखते हों तो अपने लेख यथा शीघ्र भेजें। अच्छे लेखों को प्रकाशित करने का हमारा पूरा प्रयास रहेगा। लेख टाइप किया होना चाहिए तथा इसके संबंध में फोटो, चार्ट आदि हों तो उन्हें भी साथ भेजना चाहिए। प्रकाशित होने वाले लेखों पर समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था है।

यदि आपने पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर उपयोगी पुस्तक लिखी है और आप पुलिस विज्ञान में उसे कड़ी के रूप में प्रकाशित करवाना चाहते हैं तो हमें पांडुलिपि भेजें।

यदि आप कर्मियों के कार्य को लेकर कहानी या अन्य किसी विधा में लिखने में रुचि रखते हों तो हम ऐसे साहित्य का भी स्वागत करेंगे।

यदि पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी हिन्दीतर भाषा के उच्चस्तरीय लेख का अनुवाद किया हो और आपके पास अनुवाद प्रकाशन का कापीराइट हो अथवा उनके कापीराइट की आवश्यकता न हो तो ऐसे लेख/सामग्री भी प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। प्रकाशित लेखों पर समुचित मानदेय देने की व्यवस्था है। लेख भेजते समय यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक/अनूदित व अप्रकाशित है तथा इस पर कोई मानदेय नहीं लिया गया है। अनूदित लेख के कापीराइट के संबंध में भी सूचित करें।

विषय आदि के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पुलिस विज्ञान की नमूने की प्रति मंगाने के लिए संपर्क करें :—

संपादक
पुलिस विज्ञान
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, चौथी मंजिल
सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
फोन : 24360371 एक्स. 115

वैब साइट — डब्लू.डब्लू.डब्लू. बीपीआरडी.एनआईसी.इन

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

गृह मंत्रालय

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस, कारागार एवं न्यायालयिक विज्ञान से संबंधित विषयों पर हिन्दी में पुस्तक लेखन के लिए रचनाएं आमंत्रित की जाती हैं। मूल प्रकाशित पुस्तकों पर 5 पुरस्कार 30,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है), दो पुरस्कार अनूदित मुद्रित पुस्तकों के लिए 14,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है)। योजना के भाग दो में 40,000/- रु. के दो पुरस्कार हैं। जिसके लिए निर्धारित विषयों पर रूपरेखाएं आमंत्रित की जाती हैं। जिसमें सामान्य वर्ग के लिए **दिए गए विषय पर आवेदक उस विषय पर लिखने वाली पुस्तक में क्या-क्या सामग्री व अध्यायों आदि का उल्लेख करते हुए 5-6 पृष्ठ की एक रूपरेखा को प्रस्तुत करना होगा** तथा महिलाओं के लिए आरक्षित विषय में भी उपरोक्त प्रक्रिया अपनाई जाएगी। रचनाएं/रूपरेखाएं भेजने की अंतिम तिथि सामान्यतः 30 सितंबर होती है। विस्तृत जानकारी के लिए कृपया संपादक (हिंदी), पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सी.जी.ओ. कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क करें।

(दूरभाष : 011-24362418, 24360371 एक्स-253 तथा फैक्स : 011-24362425)

अपराध विज्ञान तथा पुलिस विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु अध्येतावृति योजना

पुलिस विज्ञान तथा अपराध विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु ब्यूरो द्वारा 6 अध्येतावृतियों के लिए भारतीय नागरिकों से आवेदन पत्र आमंत्रित किए जाते हैं। इस योजना के तहत विज्ञापन प्रति वर्ष माह में भारत के सभी प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता है। इसके लिए अंतिम तिथि 30 जून होती है। इसमें अभ्यर्थी को पी.एच.डी. के लिए विश्वविद्यालय से पंजीकृत होना आवश्यक है। इसमें अभ्यर्थी को पहले 2 वर्ष 8000/- रु. तथा तीसरे वर्ष 9000/- रु. तथा इसके साथ फुटकर खर्च के लिए 10000/- रु. तथा जिस संस्था से वह पंजीकृत होगा उसे 3000/- रु. प्रदान किए जाएंगे। विस्तृत जानकारी के लिए अनुसंधान एकक, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क किया जा सकता है। पूर्ण जानकारी कार्यालय की वेब साइट www.bprd.gov.in में भी देखी जा सकती है। (संपर्क के लिए फोन नं. 01124360371243)

पुलिस एवं कारागार संबंधी विषयों पर अनुसंधान परियोजनाएं आमंत्रित

पु.अनु.वि. ब्यूरो (गृह मंत्रालय) **पुलिस एवं कारागार** से संबंधित विभिन्न विषयों पर अनुसंधान परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए गैर सरकारी संगठनों, विश्वविद्यालयों व व्यक्तिगत शोधकर्ताओं को उनके संबंधित विश्वविद्यालयों के माध्यम से आवेदन आमंत्रित कर रहा है। आवेदन भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर होती है। विस्तृत जानकारी के लिए उपनिदेशक (अनु.) एवं सहायक निदेशक (सी.सी.), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 (फोन नं. 01124362418 एवं 01124263872) पर संपर्क कर सकते हैं। तथा ब्यूरो की www.bprd.gov.in वेब साइट से भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र. सं.	*पुस्तक का नाम*	*लेखक का नाम*	*मूल्य*
1.	**भारतीय पुलिस का इतिहास** (अतीतकाल से मुगलकाल तक)	डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी	54/-
2.	**भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन**	श्री एच. भीष्मपाल	65/-
3.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री रामलाल विवेक	65/-
4.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री शंकर सरौलिया	70/-
5.	**विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका**	श्री आर.एस. श्रीवास्तव	105/-
6.	**स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुलिस की भूमिका एवं जनता का दायित्व**	डा. कृष्णमोहन माथुर	210/-
7.	**मादक पदार्थ एवं पुलिस की भूमिका**	श्री हरीश नवल	—
8.	**सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्‌भव**	प्रो. मीनाक्षी स्वामी	—
9.	**समग्र न्याय-व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका**	श्री ललितेश्वर	600/-
10.	**पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता**	डा. सी. अशोकवर्धन	568/-
11.	**महिला और पुलिस**	श्रीमती अमिता जोशी	100/-
12.	**मानवाधिकार और पुलिस**	डा. जी.एस. वाजपेयी	346/-
13.	**नई आर्थिक नीति एवं अपराध**	डा. अर्चना त्रिपाठी	183/-
14.	**बाल अपराध**	डा. गिरिश्वर मिश्र	225/-
15.	**न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां**	डा. शरद सिंह	200/-
16.	**मानवाधिकार संरक्षण एवं पुलिस**	श्री रामकृष्ण दत्त शर्मा एवं डा. सविता शर्मा	510/-
17.	**सामुदायिक पुलिस व्यवस्था**	डा. तपन चक्रवर्ती, डा. रवि अम्बष्ट	205/-
18.	**संगठित अपराध**	श्री महेन्द्र सिंह आदिल	313/-
19.	**पुलिस कार्यों का निजीकरण**	डा. शंकर सरौलिया	330/-
20.	**साइबर क्राइम**	डा. अनुपम शर्मा	450/-
21.	**अपराधों की रोकथाम और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल**	डा. निशांत सिंह	545/-
22.	**अपराध पीड़ित महिलाओं की समस्याएं**	डा. ऋता तिवारी डा. उपनीत लाली	775/-
23.	**वैध समस्याओं के निदान हेतु बढ़ती हिंसा प्रवृत्ति**	श्री राकेश प्रकाश	
24.	**आतंकवाद एवं जन साझेदारी**	श्री विश्वेश शर्मा	665/-
25.	**व्यावसायिक यौनकर्मियों का सुधार एवं पुनर्वास**	श्रीमती नीना लांबा	665/-
26.	**बंदियों का सुधार एवं पुनर्वास**	प्रो. दीप्ति श्रीवास्तव	665/-
27.	**महिला पुलिस से अपेक्षाएं**	डा. (श्रीमती) अनुपम शर्मा	870/-
28.	**महिला कैदी एवं जेल-व्यवस्था**	श्रीमती अदिति	1196/-
29.	**पुलिस नेतृत्व**	डा. प्रशांत चौबे	947/-

ब्यूरो द्वारा प्रकाशित उपरोक्त सभी पुस्तकें, नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054 से प्राप्त की जा सकती हैं।

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय)

पुलिस से संबंधित हिंदी की उत्कृष्ट पुस्तकों के लिए पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना वर्ष 2014-15

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय), भारत सरकार न्यायालयिक विज्ञान, कारागार, पुलिस प्रशिक्षण, पुलिस प्रशासन, पुलिस अन्वेषण, अंगुलिछाप, अपराध शाखा तथा पुलिस से संबंधित अन्य विषयों पर हिंदी में उत्कृष्ट मूल पुस्तकें लिखने अथवा अनुवाद करने के लिए सृजनाशील लेखकों और अनुवादकों को उपर्युक्त योजना के द्वारा प्रोत्साहित करता है।

इस योजना के निम्नलिखित दो भाग हैं—

भाग-1

पुलिस से संबंधित विषयों पर हिंदी की प्रकाशित पुस्तकों के लिए निम्नलिखित पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं :

(1) मूल प्रकाशित पुस्तकें—₹ 30,000 तक के पांच पुरस्कार। इनमें से एक पुरस्कार महिला लेखिका के लिए आरक्षित है, बशर्ते उनकी रचनाएं उपलब्ध हों।

(2) हिंदी में अनूदित प्रकाशित पुस्तकें—₹ 14,000 तक के दो पुरस्कार। एक पुरस्कार महिला अनुवादक के लिए आरक्षित है, बशर्ते उनकी रचना उपलब्ध हो।

भाग-2

ब्यूरो पुलिस से संबंधित किसी निश्चित विषय पर पुस्तक लिखवाने के लिए प्रति वर्ष ₹ 40,000 तक का पुरस्कार प्रदान करता है। लेखक को इस विषय पर क्या-क्या सामग्री पुस्तक में शामिल करनी है का उल्लेख अपनी एक रूपरेखा के द्वारा ब्यूरो में जमा करना होगा। इस वर्ष का विषय है : **वरिष्ठ नागरिकों के प्रति पुलिस का व्यवहार**। इसी भाग के अंतर्गत एक अन्य ₹ 40,000/- का पुरस्कार केवल महिलाओं के लिए आरक्षित है, जिस का विषय होगा **नक्सल विरोधी अभियान में महिला पुलिस का योगदान**। इस विषय पर भी रूपरेखाएं आमंत्रित की जा रही हैं।

नियम

(1) इस पुरस्कार योजना में भारत के सभी नागरिक भाग ले सकते हैं।

(2) योजना भाग-1 में वे सभी पुस्तकें शामिल की जाएंगी जो 31.12.2013 तक प्रकाशित हुई हैं।

3. भाग-1 के लिए पांडुलिपियां भी प्रविष्टि के रूप में भेजी जा सकती हैं, परन्तु विचार करने के बाद इन्हें पुरस्कार के लिए अनुमोदित किया जाता है तो पुरस्कार राशि केवल पांडुलिपि के प्रकाशन के बाद ही दी जाएगी। प्रकाशन की व्यवस्था स्वयं लेखक/अनुवादक को करनी होगी।

भाग-2 के अन्तर्गत निर्धारित विषय पर लिखित व पुरस्कृत पुस्तक के प्रकाशन का निर्णय मूल्यांकन समिति स्वयं करेगी।

4. पुस्तकों/पांडुलिपियों की तीन-तीन प्रतियाँ निर्धारित प्रपत्र के साथ इस ब्यूरो को भेजी जाएंगी। ये पुस्तकें/पांडुलिपियां वापिस नहीं की जाती हैं।

5. पुस्तकें लगभग 100 पृष्ठों की अवश्य होनी चाहिए।

6. योजना भाग-2 के लिए आवश्यक है कि लेखक उपर्युक्त विषय की विस्तृत रूपरेखा और अपना बायोडाटा तीन प्रतियों में भेजे।
7. इस योजना में वे पुस्तकें शामिल नहीं की जाएंगी जिन पर पहले ही भारत सरकार, किसी राज्य सरकार अथवा किसी अन्य सरकारी एजेंसी द्वारा कोई पुरस्कार प्रदान किया जा चुका हो अथवा इसके लिए कोई आर्थिक सहायता प्रदान की गई हो।
8. योजना के अंतर्गत प्राप्त पुस्तकों/रूपरेखाओं का मूल्यांकन, एक मूल्यांकन समिति द्वारा किया जाता है, जिसका निर्णय अंतिम और बाध्यकारी होता है। यदि समिति निर्णय लेती है कि कोई पुस्तक अपेक्षित स्तर की नहीं है, तो उसे अधिकार है कि वह कोई भी पुरस्कार घोषित न करे अथवा पुस्तक के स्तर को ध्यान में रखते हुए पुरस्कार की राशि को कम कर दे।
9. किसी भी लेखक को, जिसने इस योजना के अंतर्गत पुरस्कार प्राप्त किया है, वह आगामी तीन वर्षों के लिए पुरस्कार के लिए पात्र नहीं होगा।
10. उपर्युक्त संदर्भ में पुस्तक/पांडुलिपि अथवा रूपरेखाएं ब्यूरो कार्यालय में 30.9.2014 तक अवश्य पहुंच जानी चाहिए।
11. कृपया विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें :

संपादक हिंदी
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, 3/4 तल, लोदी रोड,
सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स, नई दिल्ली-110003
फोन-011-24360371/115
011-71213215

संबंधित जानकारी ब्यूरो की वेब साइट www.bprd.nic.in पर भी देख सकते हैं।